मार्च–अप्रैल 2019

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन

मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

फल फूल

फल खायें और रोग दूर भगाएं

कैथा की खेती

बुन्देलखंड में खरीफ प्याज की महत्ता

सहजन है प्राकृतिक औषधि का भंडार

www.icar.org.in

भाकृअनुप की 'किसान गांधी' झांकी को पहला पुरस्कार

किसान गांधी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की विचारधारा में ग्रामीण समुदायों की समृद्धि और विकास में कृषि एवं पशुपालन की महत्वपूर्ण भूमिका थी। जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण उन्होंने दुग्ध उत्पादन के बारे में ज्ञान अर्जन हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान के बेंगलुरु केंद्र पर वर्ष 1927 में 15 दिनों का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया था। गांधी जी ने इंदौर स्थित इंस्ट्टीयूट ऑफ प्लांट इंडस्ट्री में वर्ष 1935 में स्वयं जाकर इंदौर विधि से कम्पोस्ट तैयार करने की प्रक्रिया देखी और इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। महात्मा गांधी के चिन्तन में स्वदेशी नस्लों, जैविक कृषि तथा बकरी के दूध को उत्तम स्वास्थ्य हेतु बढ़ावा देना शामिल है।

गांधी जी के स्वप्न को पूरा करने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि का कायाकल्प करने की दिशा में निरंतर कार्यरत है ताकि खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हुए हमारे अन्नदाता किसानों की आय में सकारात्मक बढ़ोतरी हो सके। उत्तम वैज्ञानिक तकनीकों के विकास एवं उनको बढ़ावा देने से भारत ने खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल कर ली है, साथ ही साथ हम विश्व में दूध एवं कपास उत्पादन में शीर्ष स्थान पर हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की इस झांकी में दुग्ध उत्पादन, देसी नस्लों के विकास एवं उपयोग तथा पशुपालन आधारित जैविक कृषि में उपयोगिता को गांव में समृद्धि हेतु दर्शाया गया है। झांकी के अग्र भाग में बापू जी बकरियों एवं गाय के साथ दिखाए गये हैं। बेहतर स्वास्थ्य के लिए जैविक खेती तथा दूध उत्पादन में श्वेत तथा कपास क्रांति के साथ-साथ भोजन की गुणवत्ता के विश्लेषण हेतु प्रयोगशाला को प्रदर्शित किया गया है। झांकी के पिछले भाग में कस्तूरबा गांधी जी को चर्खा कातते एवं पशुओं की सेवा करते बापू कुटी, सेवाग्राम, वर्धा में दिखाया गया है। यह झांकी पशुधन आधारित, टिकाऊ एवं जलवायु अनुकूल खेती के महत्व पर प्रकाश डालती है।

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय के निदेशक पुरस्कार ग्रहण करते हुए

इस वर्ष गणतंत्र दिवस के मौके पर राजपथ से निकाली गई झांकियों में भाकृअनुप की झांकी ने पहला पुरस्कार प्राप्त करने में सफलता हासिल की है। परिषद को अपनी झांकी 'किसान गांधी' के लिए रक्षा मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण द्वारा एक समारोह में पुरस्कृत किया गया। खेती की इस झांकी में ग्रामीण समृद्धि के लिए दूध उत्पादन, स्वदेशी नस्लों और पशुधन पर आधारित जैविक कृषि के महत्व को प्रदर्शित किया गया। केन्द्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री एवं अध्यक्ष, भाकृअनुप श्री राधा मोहन सिंह ने इसके लिए परिषद के अधिकारियों को बधाई दी है।

70वें गणतंत्र दिवस की परेड के दौरान राजपथ पर निकाली गई कुल 22 झांकियों में 16 झांकियां राज्यों व विभिन्न केंद्र शासित प्रदेशों की थीं। इसमें विभिन्न मंत्रालयों और विभागों की छह झांकियां शामिल की गई थीं।

फल फूल

वैज्ञानिक बागवानी की
लोकप्रिय द्विमासिकी
वर्ष : 40, अंक : 2
मार्च-अप्रैल 2019

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक : **अशोक सिंह**

संपादन सहयोग : **सुनीता अरोड़ा**

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी : डा. **वीरेन्द्र कुमार भारती**
स. मुख्य तकनीकी अधिकारी: **अशोक शास्त्री**

लेआउट डिजाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री
आवरण चित्र
आर.के. सिंह

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 150.00
E-mail : phalphul@gmail.com

विषय सूची

संपादकीय — गागर में सागर–अशोक सिंह

3 स्वास्थ्य

फल खायें और रोग दूर भगाएं
अजय कुमार त्रिवेदी, सुशील कुमार शुक्ला और घनश्याम पांडेय

7 बगीचा

अमरूद की बागवानी
महेश चौधरी, अनोप कुमारी और रमेश कुमार दुलड़

14 विशेष

कैथा की खेती
प्रदीप कुमार विश्वकर्मा, सुभाष चन्द्र और लोकेश यादव

17 व्यावसायिक खेती

औषधीय गुणों से भरपूर इसबगोल
राम प्रसन्न मीना, मनीष कुमार सुथार और बृजेश कुमार मिश्र

20 उपयोगिता

बुन्देलखंड में खरीफ प्याज की महत्ता
आर.के. सिंह

24 आमदनी

करौंदा से किसानों की अतिरिक्त कमाई
चंदन कुमार, मोती लाल मीणा और धीरज सिंह

27 प्रसंस्करण

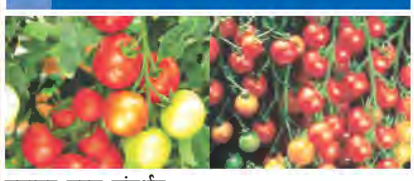

टमाटर मूल्य संवर्धन
प्रेरणा नाथ और एस.जे. काले

31 बचाव

उत्तराखंड में कुरमुला कीट प्रबंधन
निर्देश कुमार और मधुलिका पाण्डेय

35 कमाई

अगेती हरी मटर से अधिक आय
लाल सिंह, मुकेश सिंह, पी.के.एस. गुर्जर, अखिलेश श्रीवास्तव और भगवान कुमरावत

39 प्रकृति की देन

सहजन है प्राकृतिक औषधि का भंडार
ज्योतिर्मयी लेंका और रेखा चौरसिया

42 वैज्ञानिक खेती
सिक्किम में इलायची की जैविक खेती
मातबर सिंह, एस.के. दास, रविकांत अवस्थी और एस.एम. कण्डवाल

55 मसाला
धनिया की उन्नत खेती
महावीर सुमन

46 प्रबंधन
फलों की बागवानी से प्राकृतिक संसाधन संरक्षण
पी.आर. मेघवाल, अकथ सिंह और प्रदीप कुमार

आवरण II
गणतंत्र दिवस परेड-2019: भाकृअनुप की 'किसान गांधी' झांकी को पहला पुरस्कार

51 जानकारी
इस द्विमाही में टटोलें बागों की नब्ज
राम रोशन और हरे कृष्ण

आवरण III
गणतंत्र दिवस परेड-2018: भाकृअनुप की झांकी 'मिश्रित खेती-आय दोगुनी'

डिस्क्लेमर

लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें।

संपादकीय

गागर में सागर

'फल फूल' के ताजा अंक में हर बार की तरह विभिन्न प्रकार की सब्जियों और बागवानी फसलों की खेती से संबंधित वैज्ञानिक तकनीकियों के बारे में बताने के अतिरिक्त इनके पोषक गुणों पर भी विशेष तौर से जानकारियां देने का प्रयास किया गया है। जैसा कि पाठकगण जानते ही हैं कि इस पत्रिका में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अंतर्गत कार्यरत विभिन्न अनुसंधान संस्थानों के वैज्ञानिकों द्वारा शाक-सब्जियों की खेती से संबंधित और प्रयोगात्मक निष्कर्षों पर आधारित जानकारियों को सुधी पाठकों के लिए समाहित किया जाता है।

प्रस्तुत अंक में प्रकृति द्वारा प्रदत्त तरह-तरह के फलों के पोषक गुणों सहित विभिन्न प्रकार के रोगों के उपचार में इनकी उपयोगिता पर विशेष तौर पर चर्चा की गई है ताकि कृषक एवं उनका परिवार इनका सेवन कर मौसमी रोगों से अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सके। उदाहरण के लिए जामुन की बात करें तो इसके सेवन से न सिर्फ भूख बढ़ती है बल्कि पाचन क्रिया भी सुचारू बनी रहती है; अमरूद, हीमोग्लोबिन की कमी को दूर करता है और मधुमेह नियंत्रण में भी फायदेमंद है; करौंदा, रक्त एवं पित्त संबंधी विकारों के उपचार में फायदेमंद है; महुआ के फूलों के उपयोग से हृदय संबंधी रोगों का इलाज किया जा सकता है। इसी तरह बेल, लसोड़ा, खिरनी आदि फलों के स्वास्थ्यवर्द्धक गुणों पर भी प्रकाश डाला गया है। सहजन की खेती और उसके चिकित्सीय महत्व को एक अन्य लेख में प्रस्तुत किया गया है।

किसानों की आय दोगुनी करने की दिशा में केंद्र और राज्य सरकारें निरंतर कार्यरत हैं। इस बारे में कई तरह की योजनाएं संचालित की जा रही हैं और साथ ही ऐसी फसलों से किसान समुदाय को परिचित करवाने का काम जोर-शोर से किया जा रहा है जिनको परंपरागत फसलों के विकल्प के तौर पर अपनाकर आमदनी को बढ़ाया जा सकता है। इस अंक में करौंदा की फसल से ज्यादा आय अर्जन के बारे में व्यावहारिक जानकारी दी गई है। करौंदा के फलों में निहित पोषक तत्वों के बारे में भी इस क्रम में बताया गया है। इसके साथ ही इससे तैयार होने वाले विभिन्न प्रकार के प्रसंस्करित उत्पादों एवं उनके व्यावसायिक महत्व पर भी संक्षिप्त जानकारियां दी गई हैं, जिनसे फायदा उठाकर आमदनी बढ़ाई जा सकती है।

इसी प्रकार आय बढ़ाने के लिए अगेती मटर के महत्व के बारे में भी बताया गया। इसे अपनाकर किसान भाई कम से कम खर्चे में मटर जैसी परंपरागत फसलों से भी कहीं अधिक लाभ ले सकते हैं।

शीत भंडारण की समुचित सुविधाओं के अभाव में अक्सर किसानों को कम दामों पर अपनी सब्जियां बेचने को मजबूर होना पड़ता है। कभी-कभी तो ये कीमतें इस हद तक गिर जाती हैं कि मंडी तक इन उत्पादों की ढुलाई का खर्च भी नहीं निकल पाता है। टमाटर जैसी शीघ्र खराब होने वाली सब्जी भी इनमें से एक है, जिसे कम कीमत होने पर किसान खेतों में छोड़ देते हैं या फेंकने के लिए विवश हो जाते हैं। प्रस्तुत अंक में टमाटर प्रसंस्करण की कम लागत की विधियों के बारे में जानकारियां दी गई हैं, जिनके इस्तेमाल से अधिक कमाई कर पाना संभव है।

इस प्रकार यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि *'फल फूल'* के इस अंक को 'गागर में सागर' के तौर पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसका उद्देश्य किसान भाइयों को आज के दौर के अनुसार खेती के नए तौर-तरीके अपनाते हुए वैकल्पिक फसलों को उपजाने के लिए प्रेरित करना और प्रसंस्करित उत्पाद तैयार कर उनके विक्रय से आय में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहित करना भी है।

उम्मीद करते हैं कि पाठकों को यह अंक पसंद आएगा।

(अशोक सिंह)

फल खायें और रोग दूर भगाएं

अजय कुमार त्रिवेदी[1], **सुशील कुमार शुक्ला**[1] और **घनश्याम पांडेय**[1]
भाकृअनुप-केंद्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, डाकघर-काकोरी, लखनऊ-226101 (उत्तर प्रदेश)

भारतीय भोजन व्यवस्था में आदिकाल से शाकाहार को अधिक महत्व दिया जाता रहा है। फल सदियों से हमारे भोजन का अभिन्न अंग रहे हैं। प्राचीनकाल में हमारे पूर्वज फलों पर अधिक निर्भर रहते थे। फलों का उपयोग आदि मानव के समय से होता आया है। प्राचीन ग्रंथों में कंद-मूल पर मानव की निर्भरता का वर्णन मिलता है। सभ्यता के प्रारंभ में मनुष्य जंगली फल खाता था। मध्यकाल में इनके बागान अस्तित्व में आये और अब वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करके फलों का मौसमचक्र न होने पर भी फल प्राप्त करना संभव हो गया है। साधारणतया फल का विकास फूल से होता है। फल एक निषेचित, परिवर्तित एवं परिपक्व अंडाशय होता है। सामान्यतया फल तीन प्रकार के होते हैं-साधारण फल, गुच्छेदार फल और बहुखण्डित फल। कुछ फल बीजरहित या बीजविहीन होते हैं जैसे कि केला, अनन्नास। फल, प्रकृति द्वारा प्रदत्त मानव को स्वस्थ रहने के लिए दिया गया एक अनुपम उपहार है। हालांकि आधुनिकीकरण की अंधी दौड़ में फल का महत्व धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। प्रस्तुत लेख में फलों की उपयोगिता पर चर्चा की गई है।

वर्तमान में फलों की अपेक्षा मिठाइयों एवं फास्टफूड का प्रचलन तेजी से बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण पोषण संतुलन बिगड़ने लगा है। इसके साथ ही स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी बढ़ने लगी हैं। फलों का उपयोग करके कई असहज रोगों का उपचार किया जा सकता है। कुछ फलों के पौधे ऐसे हैं जिनकी जड़, तना, छाल, फूल एवं फल संजीवनी के समान औषधीय गुणों से युक्त हैं। फलों में अनेक प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं। ये विटामिन्स तथा खनिज लवण से भरपूर होते हैं। फलों का एक विशेष गुण यह भी है कि ये पोषण देने के साथ ही सुपाच्य भी होते हैं। फलों में रेशा होने के कारण ये अन्य भोज्य पदार्थों के पाचन में भी सहायता करते हैं। शरीर में अप्राकृतिक एवं अनुपयोगी भोजन से उत्पन्न होने वाले रोगों को फलों के सेवन द्वारा जड़ से दूर किया जा सकता है। अत: फल उपयुक्त आहार के साथ-साथ सही औषधि का भी कार्य करते हैं। यह कहने में अतिश्योक्ति नहीं होगी कि डॉक्टरों से बेहतर इलाज संतुलित आहार करता है।

स्वास्थ्य संबंधी फायदे

सामान्य जीवन में दांतों से लेकर आंतों तक, गुर्दों से लेकर आंखों तक शरीर के प्रत्येक हिस्से को फलों के उपयोग से फायदा पहुंचता है। रोगी के लिए फलों से बढ़कर कोई अच्छा आहार नहीं है और निरोगी के

[1]प्रधान वैज्ञानिक

लिए इससे बेहतर कोई भोज्य पदार्थ भी नहीं है। शहरी सभ्यता के विकास के साथ फलों के रस का प्रचलन शुरू हुआ, लेकिन फलों से होने वाले फायदे इनके रस से नहीं मिल सकते। फलों का रस पीने से उनमें मौजूद शुगर रक्त में तुरंत मिल जाती है, जो काफी हानिकारक हो सकती है। फल खाने से यह समस्या नहीं आती है। फलों के जूस में फाइबर नहीं के बराबर या बहुत कम होता है। अत: जूस पीने की अपेक्षा फल खाना ज्यादा लाभदायक होता है। वर्तमान समय में आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करके प्रत्येक मौसम के फल, वर्षभर प्राप्त किए जा सकते हैं। हमेशा ताजे व मौसमी फलों को प्राथमिकता देनी चाहिए। ताजे फलों की गुणवत्ता शीतगृह में रखे हुए फलों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी होती है।

पोषण से भरपूर अमरूद

फलों का महत्व

भारत में जलवायु विविधता होने के कारण विभिन्न प्रकार के फल आसानी से उपलब्ध रहते हैं। उत्तर एवं पूर्वोत्तर राज्यों में शीतोष्ण फल जैसे कि सेब, अखरोट, आड़ू, खुबानी आदि प्रमुखता से उगाये जाते हैं। मैदानी भागों में उपोष्ण कटिबंधीय फल जैसे कि आम, अमरूद, लीची आदि प्रचुरता में पाए जाते हैं। दक्षिण के राज्यों में उष्ण कटिबंधीय फल जैसे कि कटहल, केला, अनन्नास, संतरा आदि उपलब्ध रहते हैं। यद्यपि फल उत्पादन में भारत दुनिया के शीर्ष देशों में से एक है, फिर भी दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई आबादी की पोषण सुरक्षा मांग के अनुरूप आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए उत्पादन बढ़ाना अति आवश्यक है। इसके लिए यह जरूरी है कि फलों एवं फलदार पौधों के महत्व एवं उनसे होने वाले फायदों के विषय में उपलब्ध जानकारी जन-सामान्य तक पहुंच सके। इससे प्रेरणा लेकर नागरिक स्वयं ऐसी दोहरी रणनीति बनाएं कि आसपास में उपलब्ध फलदार पौधे काटे न जाएं एवं वर्तमान परिस्थिति में जलवायु अनुरूप यथासंभव नए फलदार पौधे लगाए जाएं। आज भी देश में प्रचलित फलों के साथ-साथ जंगली एवं कम उपयोग किए गए फल उपलब्ध हैं। इनमें प्रचुर मात्रा में पोषक तत्वों के साथ-साथ औषधीय गुण भी पाए जाते हैं।

औषधीय गुणों का खजाना है जामुन

फल खाने से दांत साफ एवं मसूड़े मजबूत रहते हैं। खट्टे फल जैसे कि नीबू, संतरा, आंवला आदि विटामिन 'सी' के स्रोत होते हैं। लाल, पीले फल जैसे कि पपीता, आम, टमाटर, सेब आदि कैरोटेनॉयड्स से भरपूर होते हैं। केला, अंगूर, पपीता आदि फलों में फोलिक एसिड पाया जाता है। यह लाल रक्त कणिकाओं के बनने तथा डीएनए एवं आरएनए के संश्लेषण एवं मरम्मत में सहायक होता है। ज्यादातर फलों में वसा, सोडियम, और कैलोरी सामान्यत: कम पायी जाती है, कोलेस्ट्रॉल तो नहीं के बराबर होता है।

फलों में पाए जाने वाला पोटेशियम रक्तचाप सामान्य बनाए रखने में मदद करता है। विटामिन 'सी' शरीर के सभी ऊतकों की मरम्मत के लिए महत्वपूर्ण है। यह कटे हुए घाव भरने में मदद करता है तथा दांतों और मसूड़ों को स्वस्थ रखता है। फलों में पाए जाने वाला फोलेट, लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण में मदद करता है। फलों में फाइबर प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो कि रक्त कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करके हृदय रोग रोग को कम करने में मदद करता है। भोजन करने के उपरांत शरीर में मुक्त कण (फ्री रेडिकल) बनते हैं जो कि हानिकारक होते हैं तथा शरीर में बुढ़ापे के लक्षण विकसित करते हैं। फलों के सेवन से मुक्त कण नष्ट हो जाते हैं, जिससे शरीर में रोग प्रतिरोध क्षमता का विकास होता है तथा शरीर की रक्षा में मदद मिलती है। परिणामस्वरूप शरीर युवा बना रहता है। घर से बाहर यात्रा में सामान्यत: हमें ऐसे भोजन का उपयोग करना पड़ता है, जिसकी गुणवत्ता की जानकारी हमें

रक्त विकारों को दूर करने में उपयोगी लसोड़ा

नहीं होती, ऐसी स्थिति में फलों का उपयोग करके पाचन संबंधी रोगों से बचा जा सकता है। फलों का सेवन किस समय किया जाये यह भी महत्वपूर्ण होता है। उदाहरणार्थ दैनिक जीवन में नीबू के बहुत से उपयोग हैं। भोजन से पहले सेंधा नमक के साथ नीबू लेना एक औषधि के समान है यथा:

नीबू आधा काटिये सेंधा नमक मिलाय,
भोजन प्रथमहिं चूसिये सौ अजीर्ण मिट जाये।

इसी प्रकार अनार रक्त संचार वाले रोगों में लाभदायक होता है तथा जोड़ों के दर्द को कम करता है। यह गठिया तथा वात रोग में भी लाभकारी है व कैंसर की रोकथाम में भी सहायक है। अनार खाने से आमाशय, तिल्ली और यकृत की दुर्बलता, संग्रहणी, दस्त, उल्टी तथा पेट दर्द आदि ठीक हो जाता है। आम भी हमें स्वस्थ रहने में कई प्रकार से मदद करता है। इसके उपयोग से पाचन क्रिया मजबूत होती है, पेट साफ रहता है, स्मरण शक्ति बढ़ जाती है और रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है। आम का अचार रक्त पित्त को दूर करने में सहायक है। आम की गुठली का चूर्ण अस्थमा, दस्त, पुरानी पेचिश, बवासीर और गोलकृमि के लिए प्रभावी दवा के रूप में सेवन किया जा सकता है। यह चिंता का विषय है कि बढ़ते हुए औद्योगिकीकरण तथा शहरीकरण के फलस्वरूप फलदार पौधे काफी तेजी से नष्ट हो रहे हैं।

आम

आम में उच्च मात्रा में पैक्टिम होता है, जो कि रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने में योगदान देता है। पैक्टिम प्रोस्टेट कैंसर के विकास को रोकने में भी सहायक है। आम में प्रचुर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंट पाए जाते हैं, जिससे आम कोलोन कैंसर तथा ल्यूकीमिया में भी फायदेमंद है। आम में पाए जाने वाले तत्व क्यूर्सेटिन तथा एस्ट्रागालिन कैंसर से बचाव करने में सहायक हैं। आम में विटामिन 'ए' और विटामिन 'सी' की उच्च मात्रा होती है।

पाचन तंत्र को बेहतर बनाता है बेल

विटामिन 'सी' शरीर के अंदर कोलेजन प्रोटीन का उत्पादन करने में मदद करता है। अत: आम खाने से प्राकृतिक बुढ़ापे की प्रक्रिया धीमी हो जाती है। यह विटामिन 'सी' की कमी से होने वाले संक्रमण से भी बचाता है। विटामिन 'ए' आंखों के लिए बहुत ही फायदेमंद होता है। आम में आयरन भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो कि एनीमिया के लिए फायदेमंद होता है। आम में बीटा कैरोटीन नामक कैरोटीनॉयड भी पाया जाता है जो प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ बनाता है। अतिरिक्त बीटा कैरोटीन शरीर के अंदर विटामिन 'ए' में परिवर्तित हो जाता है। आम अपचन और अतिरिक्त अम्लता जैसी समस्याओं को दूर करने में भी सहायक होता है।

अमरूद

अमरूद शरीर में हीमोग्लोबिन की कमी दूर करता है। यह मधुमेह को नियंत्रित करने में उपयोगी है। इसमें उच्च मात्रा में फाइबर पाया जाता है और यह कार्बोहाइड्रेट के अवशोषण में सुधार लाता है। इन्सुलिन के स्तर में स्थिरता बनाये रखता है। अमरूद को राख या बालू में भून (सेंक) कर खाने से काली खांसी ठीक होती है। अमरूद पर नमक और काली मिर्च लगाकर खाने से कफ संबंधी रोग ठीक हो जाते हैं। इसके कोमल पत्तों के काढ़े में काली मिर्च मिलाकर पीने से बुखार में आराम मिलता है। यह विटामिन 'सी' का एक अच्छा स्रोत है। यह स्कर्वी को नियंत्रित करने में भी मदद करता है।

जामुन

जामुन से भूख बढ़ती है और पाचन क्रिया ठीक रहती है। इसका खट्टापन और अम्लीय गुण रक्तदोषों को दूर करता है। इसमें पोटेशियम की मात्रा अधिक होती है। पोटेशियम

कई रोगों से बचाता है महुआ

खनिज से दिल का दौरा, उच्च रक्तचाप और स्ट्रोक आदि का खतरा कम होता है। जामुन में एंटीऑक्सीडेन्ट्स विशेष रूप से फ्लेबोनाइड्स पाए जाते हैं, जो स्मरणशक्ति ठीक रखने में सहायक है। इसके नियमित सेवन से रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित किया जा सकता है। पेट दर्द और दस्त होने पर जामुन के रस में सेंधा नमक मिलाकर पीने से फायदा होता है। जामुन पर नमक डालकर खाने से अपच में भी फायदा होता है। यदि उल्टियां आ रही हों तो जामुन का शर्बत देने से लाभ होता है। लीवर रोगों व रक्त विकारों में जामुन के ताजा फलों के रस में शहद मिलाकर सेवन करने से राहत मिलती है।

पीलिया, जलन आदि के उपचार में सहायक खिरनी

बेल

बेल के गूदे का उपयोग पेचिश, दस्त तथा अन्य पेट के विकारों में किया जाता है। पत्तियां पेप्टिक अल्सर और श्वसन संबंधी रोगों के उपचार में उपयोगी हैं। बेल की जड़ों का प्रयोग सर्पविष, घाव भरने तथा कान संबंधी रोगों के इलाज में किया जाता है।

महुआ

महुआ के फलों का उपयोग रक्त संबंधी रोगों में किया जाता है। महुआ की छाल का उपयोग कुष्ठ रोग के इलाज तथा घावों को ठीक करने के लिए किया जाता है। इसके फूलों का खांसी, मिचली और हृदय से संबंधित रोगों के इलाज में उपयोग किया जाता है। महुआ के तेल का उपयोग साबुन बनाने के लिए भी किया जाता है।

खिरनी

इसके फल शरीर में शीतलता लाते हैं। खिरनी का तेल औषधीय गुणों से भरपूर है। शरीर के दर्द में खिरनी की छाल को उबालकर उस पानी से नहाना लाभप्रद होता है। खिरनी पीलिया, बुखार, जलन, मसूढ़ों में सूजन, अपच आदि रोगों के उपचार में फायदेमंद है। खिरनी खून को साफ करती है। इसके अलावा सूजन, पेट दर्द और खाद्य विषाक्तता को दूर करती है। खिरनी के बीजों से पीले रंग का तेल निकलता है। इसका इस्तेमाल खाद्य तेल के रूप में किया जाता है।

करौंदा

करौंदा भूख बढ़ाता है, पित्त को शांत करता है और वात विनाशक होता है। करौंदे का फल प्यास को रोकता है और दस्त को बन्द करता है। करौंदा के कच्चे फल भूख को बढ़ाते हैं, पके हुए फल रक्त एवं पित्त दोष के उपचार में उपयोगी हैं।

लसोड़ा

लसोड़े का फल प्यास को रोकता है। इसकी कोंपलों को खाने से मूत्र संबंधी जलन और कई प्रकार के अन्य रोग मिट जाते हैं। लसोड़े के उपयोग से पेट के कीड़े, दर्द, कफ, चेचक, फोड़ा आदि ठीक हो जाते हैं। यह पित्त दोष में बहुत ही उपयोगी है तथा बलगम व खून के दोषों को भी दूर करता है। इसके बीजों को पीसकर दाद-खाज और खुजली वाले अंगों पर लगाने से आराम मिलता है। लसोड़े की छाल के काढ़े को कपूर के साथ मिलाकर सूजन वाले हिस्सों में मालिश करने से फायदा होता है। इसकी छाल को पानी में उबालकर छान लें। इस पानी से गरारे करने से गले की खराश में फायदा होता है एवं आवाज खुल जाती है।

रक्त एवं पित्त दोष के इलाज में उपयोगी करौंदा

देश के विभिन्न भागों में फलों की समृद्ध विविधता उपलब्ध है। इसकी उपयुक्त जानकारी के प्रसार से न केवल स्वस्थ रहा जा सकता है बल्कि रोगों से बचाव भी किया जा सकता है। साधारणतया सामाजिक परंपरा के अनुसार हम किसी मित्र, रिश्तेदार या विशिष्ट सम्माननीय व्यक्ति से मिलते समय भेंट स्वरूप मिठाई देते हैं। यदि इस परंपरा में धीरे-धीरे बदलाव करके फल भेंट करने की परिपाटी विकसित की जाये तो इससे फल उत्पादन को बढ़ावा मिलेगा, लोग स्वस्थ रहेंगे और हमारा भेंट में खर्च किया गया पैसा किसान तथा गांव तक पहुंचेगा। इससे किसानों को प्रोत्साहन भी मिलेगा। फल उत्पादन बढ़ने के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों के लिए फलों की विविधता को संरक्षित करने में भी मदद मिलेगी। अत: आवश्यकता है कि किसानों एवं आम नागरिकों के लिए फलों के विषय में अधिक से अधिक जानकारी उपलब्ध रहे। इस विषय पर जन सामान्य को जागरूक किया जाये जिससे किसानों की आय बढ़ने के साथ-साथ आम नागरिक भी उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके स्वस्थ रह सकेंगे। एक कहावत है कि एक साल खाना तो धान लगावो, बच्चे-पोतों को खिलाना तो फल के पेड़ लगाओ। अत: फल के पेड़ लगाना एवं फल खाना एक दूरगामी सोच का परिचायक है। ■

अमरूद की बागवानी

महेश चौधरी[1], अनोप कुमारी[2] और **रमेश कुमार दुलड़[3]**

अमरूद मिर्टेन्सी कुल का पौधा है, जो *सिडियम वंश* के अंतर्गत आता है। इसका वैज्ञानिक नाम *सिडियम ग्वाजावा* है। इसका उत्पत्ति स्थान उष्ण कटिबंधीय अमेरिका को माना जाता है। भारत में इसका प्रवेश 17वीं शताब्दी में हुआ था। देश में यह फल इतना लोकप्रिय हो गया है कि बहुत से व्यक्ति इसे यहीं का समझने लगे हैं। अन्य फलदार पौधों की तुलना में इसकी कुछ खास विशेषताओं जैसे विभिन्न प्रकार की भूमि एवं जलवायु में सफलतापूर्वक पनपने, कम समय में फलत, सहज फलन की प्रवृति, आकर्षक रंग, आकार एवं स्वाद, पोषक तत्वों से भरपूर, प्राय: स्थिर बाजार मूल्य, सालभर सहजता से कम दामों पर उपलब्धता के कारण काफी पंसद किया जाता है। अमरूद की इन्हीं विशेषताओं के कारण इसे 'गरीब का फल' अथवा 'उष्ण जलवायु का सेब' के नाम से भी जाना जाता है।

अमरूद ताजे रूप में खाने के अलावा कई मूल्यवर्धक उत्पाद जैसे जैम, जैली, आर.टी.एस., आईसक्रीम, चीज, टॉफी इत्यादि बनाने के लिए भी उपयोग में लाया जाता है। इसके फलों में पैक्टिम की अधिकता होने के कारण उच्च गुणवत्ता की जैली बनाने में इसका उपयोग किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण फल है। इसे यदि क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से देखें तो देश में उगाये जाने वाले प्रमुख फलों में इसका पांचवां स्थान है। इससे पहले आम, नीबूवर्गीय फल, केला एवं सेब का ही स्थान आता है। अमरूद की खेती लगभग सभी राज्यों में की जाती है। मुख्य रूप से यह उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, पंजाब, महाराष्ट्र इत्यादि जिलों में व्यावसायिक रूप से उगाया जाता रहा है।

[1,3]कृषि विज्ञान केन्द्र, फतेहपुर-शेखावटी-332301, सीकर (श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर) (राजस्थान); [2]कृषि विज्ञान केन्द्र, मौलासर, नागौर, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर-342304 (राजस्थान)

पोषक मान व महत्व

पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण इसके फलों को 'गरीब का सेब' कहा गया है। गुणों के मामले में इसके फल सेब से भी अच्छे माने गए हैं (सारणी-1)। बार्बेडोज चेरी एवं आंवला के बाद 'विटामिन-सी' की मात्रा इसमें अन्य फलों की तुलना में अधिक पाई जाती है। फलों के अलावा इसकी पत्तियां भी उल्टी, दस्त के उपचार में लाभकारी पाई गई हैं।

जलवायु एवं भूमि

यह उष्ण तथा उपोष्ण जलवायु का फल है। इसके पौधे सूखे की दशा से कम प्रभावित होते हैं, लेकिन पाले से अधिक नुकसान होता है। अमरूद की सफल खेती के लिए सामान्यत: 23^0-28^0 सेल्सियस तापमान उत्तम पाया गया है। साथ ही ऐसे क्षेत्र जहां वार्षिक वर्षा 100-200 सें.मी. होती हो, वहां पर उपजाने के लिए उपयुक्त रहते हैं। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में इसका उत्पादन नहीं किया जा सकता है। गुणवत्तायुक्त फलोत्पादन के लिए शुष्क ऋतु सर्वोत्तम रहती है। अमरूद की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में आसानी से की जा सकती है। सफल उत्पादन के लिए उचित जल निकास वाली, बलुई-दोमट मृदा, जो कि जीवांश पदार्थों से प्रचुर हो, उत्तम मानी गई है। पौधे की जड़ें मृदा की ऊपरी सतह से खुराक अवशोषित करती हैं। इसके लिए मृदा की ऊपरी सतह उपजाऊ होनी चाहिए। मृदा का पी-एच मान 6.5-7.5 के मध्य सही होता है। परंतु 8.2 पी-एच मान तक वाली मृदाओं में भी इससे उत्पादन लिया जा सकता है। क्षारीय भूमि जिसका पी-एच मान 7.5-9.5 तक हो, उसमें अमरूद पर उकठा रोग का प्रकोप अधिक देखा गया है।

प्रवर्धन

अमरूद का प्रवर्धन बीज एवं वानस्पतिक विधियों द्वारा आसानी से किया जा सकता है। बीज द्वारा तैयार किए गए पौधों में भिन्नता आ जाती है व फलों के आकार व गुण भी अलग-अलग होते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि नये पौधे वानस्पतिक विधियों द्वारा तैयार किए जाएं। वानस्पतिक विधियों में, भेंट कलम, विनियर कलम बंधन, कोमल शाख कलम बंधन, स्टूलिंग एवं गूटी विधि प्रमुख हैं। गूटी विधि काफी आसान है। गूटी तैयार करने के लिए पेन्सिल मोटाई की शाखा (लगभग एक वर्ष पुरानी शाखा) का चुनाव करना चाहिए। शाखा के चुनाव के पश्चात छल्ले के आकार की 2.5-3 सें.मी. लंबाई की छाल निकाल ली जाती है। छल्ले के ऊपरी सिरे पर सेराडेक्स पाउडर या इंडोल ब्यूटारिक एसिड (आईबीए) या इंडोल एसिटिक एसिड (आईएए) का लेप लगाया जाता है। छल्ले को नम मॉस घास से ढककर ऊपर से लगभग 400 गेज की पॉलीथीन की 15-20 सें.मी. चौड़ी पट्टी से 2-3 बार लपेटकर सुतली से दोनों सिरों को कस कर बांध दिया जाता है। मॉस घास पानी को आसानी से अवशोषित कर लेती है। एक से डेढ़ महीने बाद जब पॉलीथीन से जड़ें दिखाई देने लग जाती हैं, तब इस शाखा को पौधे से काटकर अलग कर लेना चाहिए। गूटी तेज धार वाले चाकू या सिकेटियर की मदद से छल्ले के करीब 2-3 सें.मी. नीचे से काटकर अलग कर लेते हैं। इसके बाद इसे पॉलीथीन की थैली, जिसमें 1:2:1 अनुपात में रेत, मृदा व खाद का मिश्रण, हो, लगा देते हैं। इस कार्य के

गूटी विधि से नये पौधे तैयार करना

खाद एवं उर्वरक डालने का तरीका

सारणी 1. अमरूद के फलों का संघटन एवं पोषक मान (प्रति 100 ग्राम में)

क्र.सं.	तत्व का नाम	पोषक मान
1	नमी (प्रतिशत)	77.9-86.9
2	कार्बोहाइड्रेट (प्रतिशत)	14.5
3	कैल्शियम (प्रतिशत)	0.01
4	पैक्टिम (प्रतिशत)	0.5-1.8
5	प्रोटीन (प्रतिशत)	1.5
6	वसा (प्रतिशत)	0.2
7	फॉस्फोरस (प्रतिशत)	0.04
8	लौह (प्रतिशत)	1.0
9	थायामिन	30 मि.ग्रा.
10	राइबोफ्लेविन	30 ग्राम
11	खनिज पदार्थ (प्रतिशत)	0.8
12	रेशा (प्रतिशत)	6.9
13	कैलोरिफिक वैल्यू	66 ग्राम
14	निकोटिनिक अम्ल	0.2 ग्राम
15	एस्कोबिक अम्ल	299 मि.ग्रा.

लिए बरसात वाला मौसम (जुलाई-अगस्त) सही रहता है। कुछ क्षेत्रों में यह कार्य फरवरी में भी किया जाता है।

गड्ढों की खुदाई

जिस बाग में रोपण का कार्य करना है सर्वप्रथम उस बाग में से सभी छोटे झाड़ीदार पौधों को निकाल दें एवं खेत को अच्छी तरह तैयार करके समतल कर लें। उसके बाद सही विधि से बाग में गड्ढे खोदने के लिए रेखांकन कर लें। सही विधि के चयन से पौधों की देखभाल में कम खर्चे के साथ ही बाग में मौजूद संसाधनों का भी ठीक तरह से सदुपयोग किया जा सकता है। बगीचा लगाने के लिए वर्गाकार विधि सबसे आसान व सुगम है। इसमें सभी प्रकार के कृषि कार्य आसानी से किए जा सकते हैं। रेखांकन करने के पश्चात खूंटी वाले स्थानों पर गड्ढों की खुदाई का कार्य करें। अमरूद के लिए गड्ढों का आकार 0.75 × 0.75 × 0.75 मीटर रखें एवं दो गड्ढों के बीच की दूरी 6 × 6 मीटर रखें। कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी, किस्म अथवा पौधे लगाने की प्रणाली पर निर्भर करती है। गड्ढे खोदते समय ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ व शेष आधी मिट्टी को दूसरी तरफ डाल दें। खुदाई के पश्चात गड्ढों को 20-25 दिनों तक तेज धूप में खुला छोड़ दें, जिससे इनमें उपस्थित कीड़े मर जाएं। गड्ढा खोदते समय ऊपर की जो आधी मिट्टी अलग निकाली गई थी, उसमें 20-25 कि.ग्रा. अच्छी तरह सड़ी गली गोबर की खाद, 1-1.5 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट, 500 ग्राम नीम खली के साथ-साथ

तैयार गड्ढा

ब्रॉजिंग

अमरूद में यह एक जटिल पोषक तत्वों की कमी से होने वाला विकार है, जोकि फॉस्फोरस, पोटेशियम और जस्ता की संयुक्त कमी के कारण होता है। यह समस्या पर्याप्त संतुलित उर्वरकों के प्रयोग किए बिना निरंतर फसल लेने के कारण होती है या जब पौधे के जड़ तंत्र में अत्यधिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। इसके कारण पौधा फॉस्फोरस का अपग्रहण करने में अक्षम होता है। पौधे पर जैसे ही फलत प्रारंभ होती है तो पोषक तत्व पुरानी पत्तियों से फलों में चले जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप पत्तियों पर तांबे के समान पट्टी दिखाई देती है। पुरानी पत्तियों की शिराओं के मध्य का स्थान लाल या बैंगनी हो जाता है। इससे प्रकाश संश्लेषण की दर भी प्रभावित होती है। विकार से ग्रसित पौधों की बढ़वार रुक जाती है। यह ऊपर से नीचे की ओर सूखकर मरने लगते हैं व फल भी सख्त हो जाते हैं। इलाहाबाद सफेदा एवं लखनऊ-49 में इसकी समस्या लाल गूदे वाली किस्म से ज्यादा देखी गई है। इससे बचाव के लिए विकार की शुरूआती अवस्था में ही 20 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट, आधा कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश एवं 100 ग्राम जिंक सल्फेट को मिश्रित करके प्रति पौधे की दर से डाल दें। साथ ही पौधे के चारों तरफ से हल्की निराई-गुड़ाई भी कर दें। अप्रैल व जून में जिंक सल्फेट 6 ग्राम तथा बुझा हुआ चूना 4 ग्राम को 1 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करने से जस्ते की कमी को दूर किया जा सकता है।

पोषक तत्व की कमी के लक्षण

सारणी 2. खाद एवं उर्वरकों की मात्रा (कि.ग्रा. प्रति पौधे की दर से)

पौधे की आयु (वर्ष में)	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1-3	10-15	0.05-0.25	0.15-1.50	0.20-0.40
4-6	20-25	0.30-0.60	0.50-2.00	0.40-0.80
7-10	30-35	0.75-1.00	2.00	0.80-1.20
10 से अधिक	50	1.00	2.50	1.20

सारणी 3. अमरूद में फूल आने एवं फलों की तुड़ाई का समय

बहार का नाम	फूल आने का समय	फलों की तुड़ाई
अम्बे बहार	फरवरी-मार्च (बसंत ऋतु)	वर्षा (जुलाई-अगस्त)
मृग बहार	जुलाई-अगस्त (वर्षा ऋतु)	सर्दी (अक्टूबर-नवंबर)
हस्त बहार	अक्टूबर-नवंबर (शरद ऋतु)	बसंत (फरवरी-मार्च)

50 ग्राम क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण अच्छी तरह से मिलाकर भर दें। गड्ढों को भूमि की सतह से 10-15 सें.मी. ऊपर तक भर दें एवं कुछ समय तक उनको व्यवस्थित होने के लिए छोड़ दें। 2-3 बारिश के पश्चात जब मृदा नीचे बैठ जाये, उसके बाद पौध रोपण का कार्य प्रारंभ करें।

रोपण का समय एवं तरीका

पौधे लगाने के लिए बरसात वाला समय (जुलाई-अगस्त) सही रहता है। परंतु जहां सिंचाई की अच्छी सुविधा उपलब्ध हो वहां यह कार्य फरवरी-मार्च में भी किया जा सकता है। रोपण से पूर्व यह ध्यान रखें कि पौधा रेखांकन वाले स्थान पर ही लगे। इसके लिए भरे गड्ढों के बीच में खूंटी लगा देनी चाहिए, जिससे निशानदेही बनी रहती है। यदि पौध रोपण का कार्य परंपरागत विधि से हो, जिसमें कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी 6 × 6 मीटर रखी जाती है, तो 277 पौधे/हैक्टर लगाए जा सकते हैं। केन्द्रीय उपोष्ण

बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि यदि अमरूद में रोपण का कार्य सघन बागवानी प्रणाली से किया जाये, जिसके तहत दूरी 3 × 3 मीटर (1111 पौधे/हैक्टर) रखी जाये तो अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है। इसके अलावा अति सघन बागवानी (मीडो आर्चडिंग) के अंतर्गत 1.0 × 2.0 मीटर की दूरी पर प्रति हैक्टर 5000 पौधे लगाए जा सकते हैं। इससे उच्च उत्पादकता के साथ गुणवत्तायुक्त उत्पादन लिया जा सकता है। इन बगीचों में देखरेख की अधिक आवश्यकता पड़ती है। इसके साथ ही समय पर काट-छांट भी करनी पड़ती है। अमरूद की इलाहाबाद सफेदा तथा ललित किस्म सघन बागवानी के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरकों की मात्रा, मृदा की उर्वरता, फसल को दी गई कार्बनिक खाद की मात्रा इत्यादि पौधे की उम्र और किस्म पर निर्भर करती है। पौधों को यदि संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक दिए जाएं तो निश्चित रूप से पौधों की अच्छी बढ़वार एवं उत्पादन के साथ-साथ अच्छी गुणवत्ता वाले फल भी प्राप्त किए जा सकते हैं। अत: जहां तक संभव हो सके मृदा जांच के उपरांत ही खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें। पौधे की उम्र की दर से खाद एवं उर्वरकों की मात्रा सारणी-2 में दर्शायी गई है।

खाद एवं उर्वरकों को देने का समय बहार पर निर्भर करता है। उर्वरकों का उपयोग फूल आने से एक माह पूर्व कर लेना चाहिए। शरद ऋतु की फसल के लिए देसी खाद, सुपर फॉस्फेट, पोटाश व यूरिया की आधी मात्रा जून तथा शेष यूरिया की मात्रा सितंबर माह में देनी चाहिए। जबकि वर्षा ऋतु वाली फसल के लिए देसी खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा दिसंबर में तथा बची हुई यूरिया की आधी मात्रा मार्च-अप्रैल में देनी चाहिए। खाद एवं उर्वरक हमेशा मुख्य तने से 2-3 फुट की दूरी पर छतरी के नीचे डालें। अमरूद में सूक्ष्म पोषक तत्वों का भी बहुत महत्व है। इसलिए मृदा परीक्षण के अनुसार संस्तुत दर से जिंक सल्फेट, मैग्नीशियम सल्फेट, मैंगनीज सल्फेट प्रत्येक 0.5 प्रतिशत के घोल का छिड़काव पौधे पर नई बढ़वार के समय प्रयोग करना वृद्धि व उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है।

सिंचाई

पौधों में सिंचाई का सही समय कई कारकों जैसे मृदा के प्रकार, मृदा में कार्बनिक

अमरूद की नयी टहनियों पर आये फूल

पदार्थों की मात्रा, मौसम इत्यादि पर निर्भर करता है। पौध रोपण के तुरंत पश्चात यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई अवश्य करें। गर्मियों में प्राय: 7-10 दिनों एवं सर्दियों में 15-20 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिए सिंचाई फरवरी-मार्च में शुरू करनी चाहिए। शरद ऋतु की फसल के लिए सिंचाई जून में प्रारंभ कर देनी चाहिए। फल विकास के समय उचित नमी होना आवश्यक होता है। बूंद-बूंद सिंचाई प्रणाली अमरूद की खेती के लिए अच्छी रहती है। इससे पानी की बचत के साथ-साथ उत्पादन एवं गुणवत्ता में भी सुधार होता है।

अंतरासस्यन

पौधों के रोपण के 2-3 वर्षों तक बगीचे से किसी प्रकार की आमदनी नहीं मिलती है। आरंभ के वर्षों में आय का साधन बना रहे, इसके लिए पौधों अथवा कतारों के बीच खाली पड़ी जगह में दलहनी फसलें जैसे मटर, ग्वार, मूंग इत्यादि उगा सकते हैं। साथ ही सब्जियों में कद्दूवर्गीय फसलें उगा सकते हैं।

पलवार

बगीचों में अक्सर यह समस्या देखने में आती है कि साफ-सफाई के अभाव में कई प्रकार के कीटों व रोगों का आक्रमण बढ़ जाता है। साथ ही खरपतवार पौधों के पोषक तत्व चुराने के साथ ही नमी की मात्रा को भी कम कर देते हैं। पलवार का प्रयोग करके इन समस्याओं से बचा जा सकता है। पलवार नमी संरक्षण के साथ-साथ मृदा के कटाव को कम करने, खरपतवारों के बीजों को उगने से रोकने एवं मृदा के तापमान को स्थिर रखने का कार्य भी करती है। पलवार के लिए सूखी घास-फूस का उपयोग किया जा सकता है। परंतु आजकल प्लास्टिक मल्च का प्रयोग अधिक किया जा रहा है। यह मृदा की भौतिक संरचना में सुधार के साथ-साथ फलों की उपज एवं गुणवत्ता में सुधार का कार्य भी करती है।

छत्रक प्रबंधन

रोपण की प्रारंभिक अवस्था में कटाई-छंटाई का मुख्य उद्देश्य पौधों को एक निश्चित आकार एवं मजबूत ढांचा प्रदान करना होता है। इसके साथ ही भूमि के पास से निकलने वाले प्ररोहों अथवा जुड़ाव से नीचे जो भी फुटान निकलता है, उसको भी समय

बहार नियंत्रण

पुष्पन को रोकने अथवा झाड़ने के लिए निम्न क्रियायें की जाती हैं:

- **हाथ से फूलों को तोड़ना:** जहां पौधों की संख्या कम हो वहां इस विधि से फूलों को तोड़ा जा सकता है। परंतु बड़े बाग-बगीचों में यह विधि व्यावहारिक नहीं है। इसमें श्रम व पूंजी अधिक लगती है।
- **सिंचाई जल रोक देना:** मृग बहार लेने के लिए फरवरी मध्य से जून तक पानी को रोक दिया जाता है। इससे बसंत ऋतु (फरवरी-मार्च) में आये फूल एवं पत्तियां गिर जाती हैं।
- **जड़ों की खुदाई:** पानी रोककर पौधे के चारों ओर से 20-30 सें.मी. गहराई तक मृदा निकाल दी जाती है। इससे पौधे अपनी पत्तियां व फूल गिरा देते हैं। परंतु इस विधि में कई बार पौधे सूख भी जाते हैं। अमरूद की जड़ें भूमि में ज्यादा गहराई तक नहीं जाती हैं एवं इनको खुला छोड़ने से क्षति अधिक पहुंचती है।
- **रसायनों का प्रयोग:** बहार नियंत्रण के लिए यह व्यावहारिक विधि है। इसमें फूलों को झाड़ने के लिए रसायनों जैसे यूरिया 10 से 15 प्रतिशत सांद्रता (100 से 150 ग्राम प्रति लीटर) या नेफ्थलीन एसिटिक एसिड के 30 पीपीएम (30 मि.ग्रा./लीटर) का छिड़काव 15 अप्रैल से 15 मई (50 प्रतिशत पुष्पन अवस्था) के बीच करना चाहिए। इससे बहार नियंत्रण में मदद मिलती है।

पर निकालते रहना चाहिए। प्रारंभ में यह देखना आवश्यक है कि मुख्य तने के तल से लगभग 70-90 सें.मी. तक कोई शाखा न हो। उसके पश्चात पौधे को इस ऊंचाई से काट देना चाहिए। कटान के बाद पौधे से बहुत सी शाखायें निकलती हैं परंतु उनमें से अलग-अलग दिशाओं में जा रही 3-4 शाखाएं चुन ली जाती हैं। इनको 3-4 महीने बाद कुल लंबाई की 50 प्रतिशत पुन: काट दी जाती है। यह कार्य एक प्रक्रिया के तहत चलता है। इससे पौधे का एक ढांचा विकसित हो जाता है, जिसके सम्पूर्ण भाग में प्रकाश पहुंच सके साथ ही बाग के सम-सामयिकी कार्य में भी आसानी रहे। ढांचा विकसित होने के पश्चात भी काट-छांट करते रहना चाहिए। अमरूद में फूल एवं फल नये फुटान पर ही आता है। अत: जितने अधिक कल्लों का सृजन होगा पैदावार में भी उतना ही इजाफा होगा। यह गुणवत्तायुक्त फल प्राप्त करने के लिए भी आवश्यक है और यह काट-छांट के समय ली जाने वाली बहार पर निर्भर करता है। यह कार्य जनवरी के अंतिम सप्ताह से फरवरी मध्य, मई-जून एवं अक्टूबर में कर सकते हैं। मृग बहार लेने के लिए जनवरी के अंतिम सप्ताह से फरवरी मध्य, हस्त बहार के लिए मई-जून एवं अम्बे बहार के लिए अक्टूबर में काट-छांट का कार्य करते हैं। काट-छांट वाले स्थानों पर बोर्डो पेस्ट अथवा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का लेप अवश्य लगा देना चाहिए।

मिलीबग

अमरूद को आम के मिलीबग (ड्रसिका मैजिफेरी) एवं नीबूवर्गीय फलों के मिलीबग (पलेनोकोक्स सिट्री) अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट के निम्फ तथा वयस्क दोनों ही कोमल शाखाओं (टहनियों), पत्तियों व पंखुड़ियों से चिपककर रस चूसते हैं। इससे पौधा पीला पड़कर धीरे-धीरे सूखने लग जाता है।

मिलीबग

नियंत्रण

- बगीचों की साफ-सफाई का पूर्ण ध्यान रखें एवं पौधों के आसपास की जगह को साफ रखें। साथ ही थालों की मिट्टी को प्रतिमाह पलटते रहें। इससे कीट के अंडे बाहर आकर नष्ट हो जाते हैं।
- कीट पौधों के ऊपर न चढ़ पाएं, इसके लिए पौधे के तने के चारों ओर पॉलीथीन की 25-30 सें.मी. (400 गेज मोटी) पट्टी बांध दें। साथ ही पट्टी के नीचे ग्रीस का लेप कर दें।
- 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण को प्रति पौधे की दर से थाले में 15-20 सें.मी. गहराई में मिलायें।
- मिलीबग, पौधे पर चढ़ गई हो तो क्लोरोपायरिफॉस या मिथाइल डेमेटान या मेलाथियान या इमिडाक्लोप्रिड या रोगोर (0.08 प्रतिशत) या कार्बोरिल (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

जड़-गांठ सूत्रकृमि

वर्तमान में इसकी भंयकर समस्या देखी जा रही है। इसके कारण बड़े-बड़े पौधे भी सूख जाते हैं। यह रोग पादप परजीवी, जो आकार में बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, उनके कारण होता है। ये परजीवी खुली आखों से दिखाई नहीं देते हैं। इस रोग के प्रमुख लक्षण जड़ें गुच्छेदार, जड़ें पतली व छोटी रहना और जड़ों का फूलकर मोटी हो जाना है। जब जड़ों को खोदकर देखते हैं तो उन पर गांठें बनी दिखाई देती हैं। सूत्रकृमि पौधे की जड़ों पर परजीवी के रूप में रहकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। साथ ही ये जड़ों में घाव उत्पन्न करके नई प्रकार की कोशिकायें बनाते हैं। इससे पौधे में खाद्य पदार्थ, पानी व लवण सोखना व उनका वितरण प्रभावित होता है। इसी कारण फसल में खाद्य पदार्थ की कमी के लक्षण उत्पन्न होते हैं। दिन के समय में पौधे मुरझाये से नजर आते हैं। पौधे में ज्यादा रोग बढ़ने से जड़ें सूखने लगती हैं। इसी कारण से पौधे की टहनियां भी धीरे-धीरे सूखने लगती हैं।

प्रबंधन

- कई बार यह रोगग्रसित पौधे द्वारा ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है। इसलिए हमेशा स्वस्थ पौधे ही खरीदकर खेत में रोपित करें।
- गर्मियों में बगीचे की गहरी जुताई करें। साथ ही रोगी पौधे, जो सूख चुके हैं, उनको जड़ों सहित खोदकर निकाल लें व नष्ट कर दें।
- अमरूद लगाने से पहले कार्बोफ्यूरॉन 66 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर व फोरेट 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की मात्रा को दो भागों में बराबर मात्रा में बांटकर खेत में डालें। नीम खली भी इसके लिए प्रभावी है। अत: खाद के साथ इसका भी प्रयोग करें।

फल एवं फूल आने का समय

अमरूद के पौधे पर वर्ष में तीन बार फूल आते हैं। इसे बहार के नाम से जाना जाता है जैसा कि सारणी-3 में दर्शाया गया है। अमरूद में पुष्पन काल 25-45 दिनों का होता है, जोकि उगायी जाने वाली किस्म, जलवायु, मृदा की दशा इत्यादि पर निर्भर करता है। यदि एक ही पौधे से तीनों बहार ली जाती हैं तो कम उत्पादन के साथ-साथ फलों की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है। अत: जहां तक संभव हो एक पौधे से केवल एक बहार ही लेनी चाहिए। शेष दो बहारों के फूलों को झाड़ देना चाहिए, जिसे बहार नियंत्रण के नाम से जाना जाता है। फलों की सबसे अधिक उपज बरसात वाली फसल में मिलती है। इस फसल में फल मक्खी, फफूंदीजनित रोगों, जैसे एंथ्रेक्नोज के कारण काफी नुकसान हो जाता है। साथ ही फलों की गुणवत्ता अच्छी न होने के कारण किसान भाइयों को आर्थिक लाभ कम मिल पाता है, इसलिए इस बहार को नहीं लेना चाहिए। बहार

लेने का समय सिंचाई की सुविधा, बाजार मूल्य अथवा मांग एवं फल की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। मृग बहार सबसे उत्तम मानी जाती है। इसके फल सर्दियों में पकते हैं, जिनमें कीट व रोगों का आक्रमण बहुत कम होता है। इससे फलों की गुणवत्ता बहुत अच्छी रहती है। इस बीच आये फलों का स्वाद भी अच्छा होता है, जिसके कारण बाजार भाव उचित मिल जाता है।

तुड़ाई एवं उपज

सामान्यत: अमरूद में फूल आने से फल बनने में 4.5-5 महीने का समय लग जाता है। फल जब परिपक्व होने लगते हैं, इनका रंग हरे से पीला होने लगता है।

उन्नत किस्में

अमरूद में कई उन्नतशील किस्में विकसित की गई हैं। किस्म का चयन बहुत ही सावधानीपूर्वक करना चाहिए, क्योंकि किस्मों का प्रदर्शन स्थानीय दशाओं जैसे जलवायु, मृदा, पानी की गुणवत्ता, प्रबंधन इत्यादि पर निर्भर करता है। पौधे हमेशा किसी विश्वस्त स्रोत अथवा सरकारी नर्सरी से ही खरीदें एवं खरीदते समय यह अवश्य सुनिश्चित कर लें कि पौधा स्वस्थ एवं रोगमुक्त हो। साथ ही पौधे का जुड़ाव सही हो एवं उसकी उम्र भी अधिक न हो। कुछ प्रमुख किस्मों के नाम एवं उनकी खासियत निम्नलिखित है:

- **इलाहाबाद सफेदा:** इस किस्म के पौधे लंबे एवं सीधे बढ़ने वाले होते हैं। फल गोल, चमकदार सतह, सफेद गूदे वाले तथा मीठे होते हैं।
- **लखनऊ-49 (सरदार):** इसके पौधे छोटे, अधिक शाखायुक्त, फैलावदार तथा अधिक फलन वाले होते हैं। फल बड़े आकार के खुरदरी सतह वाले, सफेद गूदे तथा स्वाद में उत्तम होते हैं।
- **ललित:** यह 'एप्पल कलर' से चयनित उन्नत किस्म है। फल ताजा खाने एवं प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त होते हैं। यह अधिक पैदावार वाली किस्म है। इससे रोपण के लगभग 6 वर्ष बाद 80-100 कि.ग्रा. फल/पौधा उपज मिल जाती है। सघन बागवानी के लिए भी यह उपयुक्त है। इसके पौधे छंटनी के लिए अत्यधिक अनुकूल हैं। फल मध्यम आकार के लगभग 185-200 ग्राम वजन वाले तथा गूदा कड़ा एवं लाल रंग का होता है।
- **श्वेता:** यह भी एक अधिक उत्पादन वाली किस्म है। इसका पौधा मध्यम आकार का होता है। फल गोल, मुलायम कम बीज वाले, श्वेत आभायुक्त पीले रंग के मध्यम आकार के होते हैं, जिन पर कभी-कभी लालिमा भी उभर आती है।
- **अर्का मृदुला:** भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरू द्वारा विकसित इस किस्म का चयन इलाहाबाद सफेदा किस्म द्वारा किया गया। इसके पौधे मध्यम आकार के फैलने वाले होते हैं। फल गोल, औसत वजन 180 ग्राम, गूदा सफेद, बीज मुलायम तथा कम संख्या में होते हैं। यह जैली बनाने के लिए अच्छी किस्म है।
- **अर्का अमूल्या:** यह प्रजाति इलाहाबाद सफेदा और सीडलेस की संकर किस्म है। पौधे मध्यम आकार के फैलने वाले होते हैं। फल गोलाकार, मुलायम, कम बीज वाले सफेद गूदायुक्त होते हैं।
- **अर्का किरण:** यह भी संकर किस्म है, जोकि कामसरी एवं बैंगनी लोकल किस्म से विकसित की गई है। गूदा कठोर एवं गहरे गुलाबी रंग का होता है। फलों का औसत वजन 90-120 ग्राम होता है।
- **इलाहाबाद सुर्खा:** इसके पौधे तेजी से बढ़ने वाले, अर्धवृत्ताकार तथा घने होते हैं। फल बड़े तथा छिलका एवं गूदा दोनों लाल रंग का होता है। इसके फल मीठे, कम बीज वाले तथा सुवासयुक्त होते हैं।
- **हिसार सफेदा:** यह किस्म इलाहाबाद सफेदा व सीडलैस अमरूद के द्वारा तैयार की गई है। पौधे सीधे व अधिक बढ़वार वाले, फल गोल व चमकदार, गूदा सफेद, कम बीज, अधिक मिठास एवं स्वाद वाले होते हैं।
- **हिसार सुर्खा:** यह किस्म एप्पल कलर अमरूद व बनारसी सुर्खा के संकरण द्वारा तैयार की गई है। पौधे लंबे व फैलाव वाले होते हैं। फल गोल, छिलका हल्का पीले रंग का, गूदा गुलाबी व अधिक मिठास वाला होता है।

अमरूद की नयी टहनियों पर आये फल

फलों की रंग परिवर्तन अवस्था पर उन्हें सावधानीपूर्वक तोड़ लेना चाहिए। अधपके फल स्वाद एवं खाने में भी अच्छे होते हैं। अत: समय पर तुड़ाई कर लेनी चाहिए। फलों की उपज किस्म, प्रबंधन, बहार इत्यादि कारकों पर निर्भर करती है। सामान्यत: एक पूर्ण विकसित पौधे से लगभग 70 से 100 कि.ग्रा. फल प्राप्त हो जाते हैं।

पादप सुरक्षा

अमरूद में कई तरह के कीट एवं रोगों का आक्रमण होता है, जिसके कारण फसल को बहुत नुकसान हो जाता है। जरूरी है कि सही समय पर इनकी पहचान करके इनका नियंत्रण किया जाये। कुछ महत्वपूर्ण कीट एवं रोगों का विवरण व उनके प्रबंधन के तरीके निम्नलिखित हैं:

फल मक्खी

यह कीट अमरूद की फसल को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाता है। खासकर बरसातकालीन फसल पर इसका प्रकोप सर्वाधिक होता है। यह मक्खी पीले रंग की होती है, जोकि घरेलू मक्खी से आकार में थोड़ी बड़ी होती है। इसे *डॉकस डार्सोलिस* के नाम से जाना जाता है। यह मक्खी फलों के अंदर समूह में अंडे देती है। ये अंडे सफेद रंग के छोटे-छोटे चावल के आकार के होते हैं। अंड रोपण के 2-3 दिनों बाद अंडों से पैरविहीन सफेद लटें (मैगट्स) निकलती हैं ये जो फल के अंदर के गूदे को खाने लगती हैं। इसके परिणामस्वरूप फलों में सड़न पैदा हो जाती है। ये कमजोर होकर नीचे गिरने लग जाते हैं। नवंबर से मार्च तक यह कीट प्रौढ़ावस्था में शीतनिष्क्रिय रहता है।

नियंत्रण

- बाग की गर्मियों में गहरी जुताई कर दें। ताकि मृदा में उपस्थित मक्खी के प्यूपा सतह पर आकर गर्मी के कारण नष्ट हो जाएं या चिड़ियों के द्वारा खा लिए जाएं।
- प्रभावित फलों को इकट्ठा करके भूमि में गहरा दबा देना चाहिए अथवा जला कर नष्ट कर दें, ताकि इनका जीवन चक्र समाप्त हो जाये। बरसातकालीन फसल में इसका प्रकोप अधिक होता है। इस बहार को नियंत्रित कर दें एवं सर्दियों वाली फसल ही लें।
- फल मक्खी को अमोनिया से बनी ल्यूर व आइसो यूजिनोल नामक रसायन आकर्षित करता है। इन्हें कीटनाशी के साथ मिलाकर कीटों को नष्ट किया जा सकता है।
- फल मक्खी ट्रैप से एक विशेष प्रकार की गंध आती है। यह मक्खी को अपनी ओर आकर्षित करती है। एक बोतल में 200 मि.ली. पानी में मिथाइल यूजोनिल 0.1 प्रतिशत + मेलाथियान 0.1 प्रतिशत को घोलकर पौधे पर 5-6 फीट ऊंचाई पर लटका दें। ट्रैप के मिश्रण को प्रति सप्ताह बदल दें। इसको कली से फल बनने के समय पर ही बगीचों में उचित दूरी पर लगा देना चाहिए। एक हैक्टर क्षेत्र में 10 ट्रैप पर्याप्त होते हैं।
- कार्बोरिल 0.2 प्रतिशत या सेविन या मिथाइल डिमेटान 25 ई.सी. का 1 मि.ली. प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- 500 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. + 5 कि.ग्रा. गुड़ या चीनी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। अगर प्रकोप बना रहता है तो छिड़काव 7 से 10 दिनों के अंतर पर दोहरायें।

छाल भक्षक कीट

इस कीट का प्रकोप ऐसे बाग-बगीचों में अधिक होता है, जहां सही तरीके से देखभाल नहीं होती है। इस कीट की लटें (इल्लियां) छाल, शाखाओं या तनों में छेद करके अंदर छिपी रहती हैं। ये रात्रि में छिद्रों से बाहर आकर छाल को खाकर नुकसान पहुंचाती हैं।

नियंत्रण

- बाग को हमेशा साफ-सुथरा रखें। कटी-फटी सूखी छाल एवं ग्रसित शाखाओं को काटकर जला दें।

फलमक्खी से ग्रसित फल

- कीट द्वारा बनाये गए सुराखों को साफ करके उनमें कैरोसिन या पेट्रोल या क्लोरोफार्म 3-5 मि.ली. प्रति सुरंग या छिद्र में पिचकारी या इंजेक्शन की सहायता से डालें व उनको काली मृदा या रूई के फाहों से बन्द कर दें।
- अधिक आक्रमण होने की दशा में पौधों के तनों पर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (सी.ओ.सी.) के घोल का लेप कर दें। साथ ही कार्बोरिल 50 डब्ल्यू. पी. को 20 ग्राम प्रति लीटर की दर से तने की 3 फीट की ऊंचाई तक छिड़काव करें।

म्लानि या उकठा (मुरझान, सूखा या विल्ट)

अमरूद का यह एक बहुत हानिकारक रोग है। इसके कारण इसका उत्पादन बहुत प्रभावित होता है। उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में तो इसके कारण बड़े-बड़े बगीचे नष्ट हो चुके हैं। इसमें जड़ों के रोगग्रस्त होने के काफी समय बाद लक्षण दिखाई देते हैं। रोगग्रस्त पौधों में पत्तियां बहुत कम हो जाती हैं। कई शाखाएं तो पर्णविहीन हो जाती हैं। पहले पत्तियां पीली पड़ती हैं और बाद में पौधा सूखने लगता है।

रोकथाम

- पौधे उन्हीं बागों में लगाएं जहां पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था हो। बहुत अधिक भारी मृदा में पौधे न लगाएं। वर्षा या सिंचाई में पानी को तने के चारों ओर खड़ा न होने दें।
- क्षारीय मृदा में इसका प्रकोप अधिक होता है। रोपण से पूर्व मृदा की जांच अवश्य करवा लें। उसी के अनुरूप फसल अथवा किस्म का चयन करें। जहां इस रोग की समस्या हो, वहां पर सरदार (लखनऊ-49) किस्म लगाएं। इस किस्म में यह रोग कम मिलता है।
- रोगग्रसित पौधों की मृदा को बाविस्टीन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर अच्छी तरह भिगो दें।
- ग्रसित पौधे को जड़ सहित उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। उस स्थान पर नया पौधा लगाने से पूर्व मृदा का उपचार बाविस्टीन (1 मि.ली. प्रति लीटर ड्रेंचिंग) के घोल से करें।

श्यामव्रण, फल गलन या टहनी मार रोग

- फलों में संक्रमण होने के फलस्वरूप बनते हुए फल छोटे, कड़े और काले रंग के होते हैं या कई बार लक्षण बहुत देर से उत्पन्न होते हैं। फल पकने वाली अवस्था में फलों के ऊपर गोलाकार एक या अनेक धब्बे और बाद में बीच में धंसे हुए स्थान तथा नारंगी रंग के फफूंद उत्पन्न हो जाते हैं। डालियों पर यदि संक्रमण हो जाये तो डालियां या शाखायें पीछे से सूखने लगती हैं।

उपचार

- रोगग्रस्त डालियों को काटकर 0.3 प्रतिशत कॉपरऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव करें। फल लगने के बाद 15 दिनों की अवधि पर 2-3 छिड़काव करें। ■

कैथा की खेती

प्रदीप कुमार विश्वकर्मा[1], सुभाष चन्द्र[1] और **लोकेश यादव[2]**

कैथा परिवार रूटेसी में अपने जींस की एकमात्र प्रजाति है। इसके अलावा इसे हाथी सेब, बंदर फल, दही फल, कैथ बेल और भारत में अन्य द्विभाषी नामों से जाना जाता है। यह एक धीमी गति से बढ़ने वाला पौधा है। इसकी ऊपर की बढ़ती हुई शाखाएं शिखर के पास बाहर की ओर झुकती हैं जहां उन्हें पतली शाखाओं में विभाजित किया जाता है। लाल, हरे रंग के फूल (1.25 सें.मी.) छोटे, ढीले, टर्मिनल या पार्श्व में पैदा होते हैं। ये आमतौर पर उभयलिंगी होते हैं। फल अंडाकार, 2 से 5 इंच (5-12.5 सें.मी.) चौड़ा होता है।

कैथा एक बहुत उपयोगी व सख्त किस्म का पौधा है, इसके उपयोग बहुत सारे हैं। दक्षिण भारतीय लोग इसका उपयोग इमली के साथ मिला कर रस बनाने में करते हैं। यह पौधा खेत के चारों तरफ फसल की सुरक्षा के लिए बहुत ही उपयोगी है। इसको किसी भी प्रकार के विशेष पोषक तत्वों की जरूरत नहीं पड़ती है और यह कम पानी उपलब्धता में आसानी से फसल देता है। इसके फल का गूदा पकने पर अत्यंत खुशबूदार होता है।

[1]पीएचडी शोधछात्र, फलविज्ञान, भाकृअनुप-भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बेंगलुरु-560089; [2]टीचिंग एसोसिएट, कृषि महाविद्यालय,आणंद कृषि विश्वविद्यालय, जबूगाम (गुजरात)

संस्कृति और प्रचार

इसकी कोई विकसित किस्म उपलब्ध नहीं है। हालांकि प्रकृति में खट्टे और मीठे प्रकार के बड़े आकार वाले फल और उच्च उपज वाली संततियां मौजूद हैं। वानस्पतिक माध्यम से प्रवर्धन के लिए बड़े आकार के और मीठे फलों के साथ उच्च उपज का चयन किया जाना चाहिए। वर्तमान में इसका बीज से प्रवर्धन मुख्य रूप से किया जाता है। यदि इसे अधिक गर्मियों और मानसून के शुरूआती दिनों में किया जाता है तो प्रवर्धन सफल होता है। इसे शुष्क क्षेत्रों में जहां सिंचाई क्षमता सीमित है, रोपण में भी लगाया जा सकता है।

रोपण

आमतौर पर कैथा उपजाऊ या समृद्ध मृदा में नहीं लगाया जाता है। बंजर भूमि में बड़े पैमाने पर इसका रोपण किया जाता है और गड्ढे को प्रत्येक 8 मी.^{2} की दूरी पर 1 मी.^{2} के आकार के साथ खोदा जा सकता है। 20 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद, रेत और शीर्ष मृदा के साथ गड्ढे भरने के बाद मानसून की शुरूआत में रोपण किया जाना चाहिए। इस तरह से रोपण के तुरंत बाद बेसिन का गठन किया जाना चाहिए, जिससे पानी रोकने की सुविधा मिल सके।

अन्य उपयोग

पैक्टिम

पैक्टिम के कई उपयोग हैं। यह लाल रंग का होता है और शुद्धिकरण की आवश्यकता होती है।

फल का छिलका

फल का छिलका स्नफबॉक्स और अन्य छोटे कंटेनर बनाने के काम आता है।

गम

तना और शाखाएं विशेष रूप से बरसात के मौसम के बाद एक सफेद, पारदर्शी गम निकालती हैं। कलाकारों के पानी के रंग, स्याही, रंग और वार्निश बनाने में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसमें 35.5 प्रतिशत अरबीनोस और जाइलोज, 42.7 प्रतिशत गैलेक्टोज और रहमनोज और ग्लुकुरोनिक अम्ल होते हैं।

लकड़ी

लकड़ी पीली भूरी या सफेद, कठोर, भारी और टिकाऊ प्रकार की होती है। यह निर्माण, पैटर्न बनाने, कृषि उपकरण, मिलों, नक्काशी और अन्य उत्पादों के लिए रोलर्स के लिए मूल्यवान है। यह ईंधन के रूप में भी काम आती है।

औषधीय उपयोग

फल भारत में यकृत और कार्डियक टॉनिक के रूप में बहुत अधिक उपयोग में लाया जाता है। दस्त और अतिसार को रोकने और अस्थि, गले और मसूड़ों के रोगों के प्रभावी उपचार, लुगदी को पंख वाले कीटों के काटने और विषैले कीड़ों के डंकों के उपचार के लिए किया जाता है। नई पत्तियों का रस दूध और चीनी कैंडी के साथ मिलाया जाता है शहद के साथ मिश्रित पाउडर गम, बच्चों में दस्त को दूर करने के लिए दिया जाता है। पत्तियों से व्युत्पन्न तेल खुजली पर लगाया जाता है और पत्ती का काढ़ा बच्चों के पाचन में सहायता करता है। पत्तियां, छाल, जड़ें और फल लुगदी सभी उपचार हेतु उपयोग की जाती हैं। छाल को बैरिंगटोनिया के साथ चबाया जाता है और जहरीले घावों पर लगाया जाता है। पत्तियों में स्टिगमास्टोल (0.012 प्रतिशत) और बर्गप्टन (0.01 प्रतिशत) होता है। छाल में 0.016 प्रतिशत मार्मिसिन होता है। रूट छाल में ऑरप्टेन, बर्गप्टन, आइसोपिम्पिनेलिन और अन्य क्यूमारिन शामिल हैं।

उत्पत्ति और विवरण

कैथा का फल

भारत और श्रीलंका के सूखे मैदानी इलाकों में यह सामान्य तौर पर पाया जाता है। कभी-कभी बगीचों में और सड़कों के किनारों पर भी इसे लगाया जाता है। यह उत्तरी मलाया और पेनांग द्वीप पर भी दक्षिण पूर्व एशिया में अक्सर उगाया जाता है। भारत में यह फल परंपरागत रूप से 'गरीब व्यक्ति का भोजन' था इसकी प्रसंस्करण तकनीकों को 1950 के मध्य में विकसित किया गया था।

जलवायु

कैथा का पेड़ पश्चिमी हिमालय में 1,500 फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि एक अलग शुष्क मौसम के साथ मानसून जलवायु की इसे आवश्यकता होती है।

मृदा

यह हल्की मृदा के लिए सबसे अच्छी तरह अनुकूल है।

किस्में

- बड़े मीठे फल
- छोटे खट्टे फल

प्रवर्धन

कैथा पौधों के प्रवर्धन की सबसे आम और सरल विधि बीज है। रोपणों में वास्तविक प्रकार के लक्षण नहीं होते हैं और उपज और फल पात्रों में अत्यधिक भिन्नता पैदा करते हैं, इसलिए कैथा में मानक किस्में बहुत कम हैं। पौधा आमतौर पर बीज से उगाया जाता है, हालांकि इससे कम से कम 15 वर्ष तक फल नहीं आते। प्रवर्धन रूट कटिंग, एयरलायर्स या बुआई और अस्थिरता को प्रेरित करने के लिए स्वयं के रोपण पर उभरकर हो सकता है। आनुवांशिक एकरूपता के रखरखाव और क्लोन या किसान की पहचान के संरक्षण में वनस्पति प्रचार का महत्व बागवानी फसलों में अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है। इसलिए कैथा पौधों के त्वरित लक्षण के लिए वनस्पति प्रवर्धन की एक उपयुक्त विधि खोजने की एक बड़ी आवश्यकता है।

प्रबंधन

- हाथ से लार्वा उठाकर नष्ट करें
- प्रारंभिक चरण में स्प्रे प्रति लीटर पानी में 2 मि.ली. मिथाइल पैराथियोन
- पैरासिटोइड्स ट्राइचोग्राम इमेनेसेन्स और टेलीनोमस एसपी फील्ड में छोड़ दें।

ऋतु

मलाया में, पत्ते जनवरी में झड़ जाते हैं, फूल फरवरी और मार्च में आते हैं और फल अक्टूबर और नवंबर में परिपक्व होता है। भारत में इसका फलन अक्टूबर से मार्च तक शुरू होता है।

फल तुड़ाई

फल को 1 फुट की ऊंचाई से एक कठिन सतह पर छोड़कर परिपक्वता के लिए परीक्षण किया जाता है। तोड़ने के बाद

कैथा के फल

कैथा के उपयोग और पोषक तत्व

पके हुए फल की लुगदी चीनी के साथ मिश्रित कर खाई जाती है। लुगदी से भी एक बहुत अच्छा शरबत बनाया जाता है। लुगदी (खाद्य भाग) इस्तेमाल किए जाने वाले कुल फल का 55.58 प्रतिशत है। कैथा लुगदी जेली बनाने के लिए एक उत्कृष्ट कच्ची सामग्री है। इसकी जेली गुणवत्ता में काले किशमिश या सेब जेली जैसी दिखती है। फर्म क्विवरिंग स्थिरता और अत्यधिक स्वीकार्य स्वाद के साथ उज्ज्वल बैंगनी रंग के इसके फल होते है। पेड़, देश के कुछ हिस्सों में चारा के इस्तेमाल किए जाते है और इसकी लकड़ी टिकाऊ होती है।

अंत: खेती

पहले 5 वर्षों के लिए बरसात के मौसम के दौरान इसकी अंत: खेती की जा सकती है। मानसून के मौसम के बाद सूखी पत्तियों के साथ पलवार किया जा सकता है। मानसून की बारिश की शुरूआत में प्रत्येक पेड़ के लिए हर साल 25 कि.ग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद डालनी चाहिए। यह फल आकार और गुणवत्ता में वृद्धि करने में मदद करेगी। फसल की वृद्धि के शुरूआती चरणों के दौरान, यदि गर्मी के दौरान पॉट वॉटरिंग किया जाता है तो यह फायदेमंद होगा। साइट्रस परिवार के सदस्य होने के नाते इस पर साइट्रस का पत्ते खाने वाले कैटरपिलर द्वारा हमला किया जाता है। यह पौधे को पूरी तरह से नष्ट कर देता है। किसी भी संपर्क कीटनाशक का छिड़काव लार्वा के विनाश के बाद किया जाना चाहिए।

फल को पूरी तरह से पकाए जाने के लिए 2 सप्ताह तक धूप में रखा जाता है। फल पौधे लगाने के 3-4 साल बाद लगते हैं। लेकिन इष्टतम उत्पादकता तक पहुंचने में लगभग 10 साल लग जाते हैं। एक इलाके और फलों की जलवायु स्थितियों के आधार पर फरवरी से मई में फूल तथा जुलाई से दिसंबर तक फल आ जाते हैं। एक अच्छी तरह से विकसित पेड़ 200-250 फल प्रतिवर्ष देता है।

कीट

फ्रूट बोरर (फलबेधक): डीडोरिक्स इस्ट्रामी

नुकसान के लक्षण

- कैटरपिलर युवा फलों और आंतरिक सामग्रियों (लुगदी और बीज) पर खाता हुआ दिखता है।

कीट की पहचान

लार्वा: गहरे भूरे, छोटे और छोटे बाल के साथ वयस्क, ब्लू ब्राउन तितली सरीखे।

प्रबंध

- **ईटीएल:** 5 अंडे/पौधे
- क्षतिग्रस्त फल इकट्ठे करके नष्ट करें
- कम संवेदनशील प्रजातियों का प्रयोग करें
- 5 सें.मी. तक होने पर पॉलीथीन बैग से फल को कवर करें
- वयस्क कीटों की गतिविधि की निगरानी के लिए हल्के जाल का प्रयोग करें
- मैलाथियान 50 ईसी 0.1 प्रतिशत का दो बार, एक फूल गठन पर और अगला फल सेट पर छिड़काव करें
- एनएसकेई 5 प्रतिशत या नीम फॉर्मूलेशन 2 मि.ली./एल 30 ईसी 1.5 मि.ग्रा./एल डाइमेथोएट का छिड़काव करें
- एक लाख/एकड़ में ट्राइकोग्राम चिलोनिस रिलीज करें
- **फल बोरर:** डीडोरिक्स आइसोक्रेट्स
- साइट्रस तितली: पपीलियो विध्वंसक

नुकसान के लक्षण

- पत्तियों पर कैटरपिलर फीड
- पतझड़

कीट की पहचान

- **लार्वा:** शुरूआती चरण में लार्वा पक्षी गिरने जैसा दिखता है। लार्वा बेलनाकार, हरा और भूरा पार्श्व बंधन जैसा होता है
- **वयस्क:** कई पीले अंकन के साथ गहरे भूरे रंग की तितली होती है। ■

भाकृअनुप की लोकप्रिय पत्रिका
'खेती' मार्च, 2019 अंक के प्रमुख आकर्षण

- जल संरक्षण की कृषि में उपयोगिता
- सरसों व तोरिया से कमाएं अधिक लाभ
- वर्षा आधारित खेती से अधिक आय
- गन्ने के अवशेषों का प्रबंधन
- बदलती जलवायु के दुष्परिणामों को कम करने के उपाय
- फसल गहनता है वर्तमान की जरूरत
- पशु चारे के लिए नैपियर घास की खेती
- जैवविविधता के लिए घातक है गाजर घास
- तापमान में बदलाव से गन्ना खेती का बचाव
- प्लास्टिक बोतल में ढिंगरी मशरूम का उत्पादन
- धान-गेहूं फसल प्रणाली की समस्याएं एवं समाधान
- गाय के दूध से पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक

संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-12 (दूरभाष: 25843657)

औषधीय गुणों से भरपूर इसबगोल

राम प्रसन्न मीना, मनीष कुमार सुथार और **बृजेश कुमार मिश्र**
वैज्ञानिक, पौध रोग विज्ञान, भाकृअनुप-औषधीय एवं सगंधीय पादप अनुसंधान निदेशालय, आणंद (गुजरात)

औषधीय पादपों का मानव जीवन में प्राचीनकाल से ही बहुत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत में औषधीय पादपों का उपयोग रोगों के उपचार करने में किया जाता रहा है। भौगोलिक व वानस्पतिक विविधताओं के कारण भारत औषधीय पादप संपदाओं में धनी है। इसबगोल भारत में औषधीय व आर्थिक दृष्टिकोण से प्रमुख रबी फसल है। देश में इसे सामान्यतया इसबगोल के नाम से जाना जाता है। इसका वानस्पतिक नाम *प्लान्टेगो ओवेटा* है, जो प्लान्टेजिनेसि कुल में आता है। 'प्लान्टेगो ओवेटा' शब्द परशियन भाषा से लिया गया है। शाब्दिक अर्थ 'होर्स फ्लावर' होता है। भारत का इसबगोल के उत्पादन व निर्यात में विश्व में प्रथम स्थान है। कुल उत्पादन का 80 प्रतिशत यूरोपियन देशों को निर्यात कर लगभग 60 मिलियन रुपये हर वर्ष विदेशी मुद्रा अर्जित कर यह कृषि अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है।

इसबगोल की फसल आर्थिक एवं औषधीय गुणों से भरपूर होने के साथ ही निर्यात की दृष्टि से भी देश की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। औषधीय गुणों के कारण प्राचीन काल से ही इसका उपयोग भारतीय चिकित्सा पद्धति में होता आ रहा है। यह फसल वातावरण की विपरीत परिस्थितियों व कम उपजाऊ भूमि में भी आसानी से उगाई जा सकती है। कम लागत के साथ उन्नत किस्मों को लगाकर इस फसल से अच्छी आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

प्रमुख क्षेत्र एवं उत्पादन

भारत, विश्व का सर्वाधिक इसबगोल उत्पादक व एकमात्र निर्यातक देश है। राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र इसबगोल उत्पादन करने वाले प्रमुख राज्य हैं। उत्पादन का लगभग 80 प्रतिशत भाग विदेशों में निर्यात किया जाता है। यूरोपियन देशों में यूएसए प्रमुख निर्यातक देश है।

जलवायु व भूमि

पश्चिमी भारत में रबी के मौसम में इसकी बुआई का उत्तम समय अक्टूबर से नवंबर तक होता है। यह फसल कम पानी में अच्छी पैदावार देती है, इसलिए शुष्क प्रदेश के लिए बहुत कारगर एवं किफायती है। इसबगोल की फसल को हल्की दोमट से लेकर रेतीली मृदा में उगाया जा सकता है।

इसबगोल के बीजों की भूसी में एक चिपचिपा पदार्थ म्यूसीलेज पाया जाता है, जो कि फाइबर से भरपूर होता है। पानी में डुबोने से यह स्वादहीन व गंधहीन जेल बनाता है। इसके रोचक गुण के कारण यह कब्ज, अपच को ठीक कर पाचनतंत्र को मजबूत बनाता है। इसबगोल के बीज की भूसी पानी की नमी के प्रति बहुत सहिष्णु होती है। इसलिए बेमौसम वर्षा व अधिक ओस फसल के पकने के समय हानिकारक होते हैं।

बीज व बुआई का समय

इसबगोल की फसल के लिए 4-4.5 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर उपयुक्त रहता है। बुआई के लिए अक्टूबर का समय सबसे

उपयुक्त होता है। इसके बाद बुआई तथा सघन फसल बोने से मृदु आसिता रोग तथा एफिड (चेंपा) का प्रकोप बढ़ जाता है। ये दोनों ही फसल को आर्थिक एवं गुणात्मक दृष्टि से भारी नुकसान पहुंचाते हैं।

बुआई की विधि

सामान्यतया इसबगोल की बुआई बीज छिड़काव विधि से ही की जाती है। हालांकि पंक्ति में 30 सें.मी. दूरी पर बुआई करने से, सस्य क्रियाएं जैसे, निराई-गुड़ाई से खरपतवार नियंत्रण कटाई आदि करने में आसानी रहती है। इसबगोल के बीज छोटे होने के कारण इन्हें बालू में मिलाकर छिड़काव या पंक्तियों में बुआई करना आसान होता है। बीज की गहराई 1-2 सें.मी. से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। इससे अधिक गहराई पर डालने से अंकुरण में कमी रह जाती है।

भूमि की तैयारी

इसबगोल के बीज का अंकुरण भुरभुरी मृदा में उपयुक्त होता है। इसके लिए खेत की अच्छी तरह से जुताई कर पाटा चलाने से खेत तैयार हो जाता है। खेत पूर्ण रूप से समतल व उसमें उचित जल निकास का प्रबंध होना चाहिए, क्योंकि पानी भरा रहने से रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है।

उपयोग

वर्तमान समय के बदलते सामाजिक रहन-सहन, आहार एवं वातावरण में विभिन्न प्रकार के जटिल रोग होने के कारण औषधीय पौधों की मांग बढ़ती जा रही है। इसके उपयोग से कई रोगों का उपचार किया जा सकता है। इसबगोल का उपयोग बहुत सी जटिल स्वास्थ्य संबंधित समस्याओं के लिए किया जाता है। इसमें कब्ज मुख्य है। इसके अलावा डायरिया, आंव, दस्त, मोटापा, हृदय विकार, खून में कोलेस्ट्रॉल को कम करना, पाचन तंत्र सुधार आदि के लिए प्रमुखता से इसका उपयोग किया जाता है।

इसबगोल में फूल बनने की अवस्था

सारणी : इसबगोल फसल का मृदु आसिता रोग प्रबंधन क्षेत्र प्रदर्शन में

क्र.सं.	उपचार	रोग उग्रता			पीडीआई
		7 डीएआई	14 डीएआई	21 डीएआई	
1	एफवाईएम + ट्राइकोडर्मा	1	3	5	15.2
2	एफवाईएम+अरंडी खली+ट्राइकोडर्मा	1	2	3	13.4
3	एफवाईएम+नीम खली+ट्राइकोडर्मा	1	3	4	12.3
4	अरंडी खली + ट्राइकोडर्मा	1	3	4	13.5
5	नीम खली + ट्राइकोडर्मा	1	4	5	14.2
6	एफवाईएम+नीम खली+अरंडी खली+ट्राइकोडर्मा	1	2	3	9.6
7	ट्राइकोडर्मा	2	4	5	16.2
8	रिडोमिल एमजेड	0	1	1	4.8
9	नियंत्रण	3	5	8	21.2

किस्में

इसबगोल की उन्नत किस्मों से इसका उत्पादन अच्छा मिलता है। इसकी व्यावसायिक खेती के लिए निम्न किस्मों की अनुशंसा की जाती है। इनमें प्रमुखत:-बल्लभ इसबगोल-1, निहारिका, गुजरात इसबगोल-2, गुजरात इसबगोल-4, जवाहर इसबगोल-4 आदि उन्नत किस्में हैं।

फसल कटाई व उत्पादन

इसबगोल की फसल 90-120 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। फसल के पकने के समय इसकी पत्तियों का रंग पीलापन लिए तथा स्पाईक भूरापन लिए होता है। फसल की कटाई पूर्णतया शुष्क व साफ वातावरण को ध्यान में रखकर पौधों के सूख जाने के बाद करते हैं। फसल का औसत उत्पादन 10-15 क्विंटल होता है। उत्पादन में विविधता फसल की किस्म, जलवायु व भौगोलिक विभिन्नताओं से भी प्रभाव पड़ता है।

प्रसंस्करण

इसबगोल के बीज के हस्क (भूसी) का प्रसंस्करण इसबगोल डी-हस्कर विल्स से किया जाता है। इसमें ग्राइंडिंग दबाव से हस्क बीज से अलग हो जाता है। पंखों व जालियों के माध्यम से छानकर यह शुद्ध मात्रा में प्राप्त किया जाता है। इसबगोल के कुल बीज के वजन का लगभग 25 प्रतिशत भार हस्क प्राप्त किया जाता है।

प्रमुख रोग एवं कीट प्रबंधन

इसबगोल की खेती कम उर्वराशक्ति वाली भूमि और शुष्क व कम सिंचाई वाले क्षेत्र में भी सफलतापूर्वक की जा रही है। फसल में उत्पादकता की कमी के अनेक कारणों में से रोग व कीटों का भी प्रमुख स्थान है। रोगों के कारण फसल उत्पादन में 30 से 50 प्रतिशत तक कमी आ जाती है।

मृदु आसिता

मृदु आसिता को सामान्यतया डाउनी मिल्ड्यू के नाम से जाना जाता है। यह पेरेनोस्पोरा प्लांटेजीनीस नामक कवक से होता है। यह फसल के लिए सर्वाधिक नुकसानदेह होता है। कई बार इससे फसल पूर्णतया भी

इसबगोल की पत्तियां

इसबगोल का उकठा रोग

इसबगोल पर एफिड का प्रकोप

नष्ट हो जाती है। अधिक सघन फसल, अधिक बीज मात्रा, बार-बार सिंचाई व नमी का रहना तथा अधिक मात्रा में नाइट्रोजनयुक्त उर्वरकों का उपयोग इस रोग को बढ़ाने में सहायक है।

इस रोग के प्रभावी नियंत्रण के लिए 3 ग्राम मेटालेक्सील (रिडोमिल एमजेड) प्रति कि.ग्रा. बीज में डालकर बीजोपचार करना चाहिए। रोग के लक्षण दिखाई देने पर 15 दिनों के अंतराल पर 0.025 प्रतिशत घोल के तीन बार छिड़काव करना चाहिए। नाइट्रोजन व पौष्टिक उर्वरक से भी इस रोग में कमी होती है।

उकठा रोग

यह रोग फ्यूज़ेरियम नामक कवक के कारण होता है। यह कवक पौधों के जड़ तंत्र को नष्ट कर देता है, जिससे पानी व खाद्य पदार्थों का संचार रुकने के कारण पौधे सूख जाते हैं। इस रोग के प्रबंधन के लिए ट्राइकोडर्मा का 2 कि.ग्रा. पाउडर, 10 कि.ग्रा. गोबर की खाद में मिलाकर प्रति हैक्टर डालने की संस्तुति की जाती है। साथ ही रोग ग्रसित खेत में फसल चक्र भी अपनाया जा सकता है।

एफिड

एफिड (एपिसगोस्पिपी) इसबगोल का महत्वपूर्णनाशी कीट है। इसका प्रकोप फसल की बुआई के 60-70 दिनों बाद फूलों की अवस्था पर होता है। इसके प्रभावी नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत मेटसिस्टोक्स 25 ई.सी. के 12-15 दिनों के अंतराल पर दो छिड़काव करते हैं। ■

अनन्नास के रेशों से तैयार होगा कपड़ा

अनन्नास सिर्फ खाने के लिए ही अच्छा नहीं है बल्कि अब इसके रेशों से बने तैयार उत्पाद को पहना भी जा सकता है। साथ ही इससे बने और भी कई उत्पाद बाजार में उपलब्ध हैं। कारमेन हिजोसा नामक एक स्पेनिश महिला ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि आप ठान लो तो कुछ भी असंभव नहीं है। उन्होंने पिनाटेक्स नामक एक ऐसे उत्पाद का विकास किया जो अनन्नास के बेकार पत्तों के लंबे रेशों से बुना हुआ कपड़ा है। यह फैशन उद्योग को चमड़े का एक स्थायी विकल्प देगा। यह उत्पाद श्रीमती हिजोसा के 8 साल की मेहनत और लगन का परिणाम है।

हिजोसा ने अनन्नास अनाम नामक एक कंपनी की स्थापना की। फिलीपींस में वह अनन्नास किसानों के साथ काम करती है, जो फाइबर को काटते और छीलते हैं। स्पेन में पिनेटेक्स के रूप में यह प्राप्त होता है। इसका एक वर्ग मीटर उत्पाद बनाने के लिए 460 पत्ते लगते हैं। इसके कच्चे माल की कोई कमी नहीं है। अनन्नास उद्योग विश्व स्तर पर हर साल 40,000 टन बेकार अनन्नास के पत्तों का उत्पादन करता है, जिन्हें आमतौर पर सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता है या जला दिया जाता है। यह एक लचीला उत्पाद है,

इसका उपयोग कपड़े, बैग, जूते, पर्स, वांच बैंड और सीट कवर जैसे उत्पादों के निर्माण में किया जा रहा है। 2015 में वाणिज्यिक लांच के बाद से, पिनाटेक्स का उपयोग लगभग 500 निर्माताओं द्वारा किया गया है, जिसमें फैशन हाउस ह्यूगबॉस द्वारा बेची गई स्नीकर्स भी शामिल हैं। छोटे पैमाने के सभी ब्रांड के उत्पाद और बाइकरस्टाइल जैकेट भी इससे बने हैं। जब यह गीला हो जाता है तो यह चमड़े की तरह सूख जाता है और यह पूरी तरह से टिकाऊ होने के अलावा हर तरह से चमड़े की तरह व्यवहार करता है।

पिनाटेक्स, चमड़े का एक स्थायी विकल्प है। यह पर्यावरण के अनुकूल है, क्योंकि यह पत्तों के कचरे का उपयोग करके बनाया जाता है, जिसे अन्यथा सड़ने के लिए छोड़ दिया जाता था। यह क्रूरता-मुक्त है, क्योंकि इसमें किसी भी जानवर की जरूरत नहीं होती है। अनन्नास उगाने वाले किसान इस नए उद्योग के साथ अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं।

जब इसके बने उत्पाद खराब हो जाते हैं तो इन्हें नष्ट करने पर किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलता है। इसको नष्ट करके उर्वरक में परिवर्तित किया जा सकता है।

फिलहाल, पिनाटेक्स चमड़े की तुलना में सस्ता है। यह पहले से ही विभिन्न कंपनियों द्वारा जूते के उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है।कपड़े के रूप में इससे सिलाई, डाई और प्रिंट करना आसान है। यह गुणवत्ता और स्थायित्व के लिए कई आईएसओ मानकों को पूरा करता है।

प्रस्तुति-**सोनिया चौहान** ■

बुन्देलखंड में खरीफ प्याज की महत्ता

आर.के. सिंह
सहप्राध्यापक, सब्जी विज्ञान विभाग
उद्यान महाविद्यालय, बांदा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बांदा-21001 (उत्तर प्रदेश)

भारत में उगाई जाने वाली सब्जी की फसलों में प्याज का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह हमारे देश के विभिन्न भागों में बड़े पैमाने पर उगाई जाती है व जनसाधारण द्वारा किसी न किसी रूप में प्रयोग की जाती है। प्याज का उपयोग सलाद के अलावा भूनकर अथवा विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार के शाकाहारी व मांसाहारी व्यंजन बनाने में किया जाता है। प्याज अपनी गंध, तीखेपन और औषधीय मूल्य के कारण अपनी एक अलग पहचान रखती है। प्याज का उपयोग प्रसंस्करित रूप में भी बहुत प्रचलित है। इसका उपयोग छल्ले, चूर्ण, तेल, गारा, अचार इत्यादि के रूप में भी किया जाता है। निरंतर घरेलू उपयोग एवं निर्यात की मांग में वृद्धि कृषकों को व्यावसायिक स्तर पर प्याज उत्पादन करने के लिए प्रेरित कर रही है। पिछले 3-4 दशकों में भारत, प्याज उत्पादन में बड़ा योगदान देकर पूरे विश्व में दूसरे स्थान पर है।

बुन्देलखंड क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है। यहां की जलवायु और मृदा खेती की अपार संभावनाओं को प्रोत्साहित करने के लिए आमंत्रित करती है। इस क्षेत्र में सिंचाई के पानी की थोड़ी कमी है, लेकिन खरीफ में सब्जी उगाने के लिए यह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाता है। इस प्रक्षेत्र में खरीफ प्याज की उत्पादन की संभावना अपेक्षाकृत ज्यादा है। खरीफ प्याज का उत्पादन मध्य अक्टूबर से लेकर नवंबर तक किया जाता है। उस समय प्याज की कीमत प्रति कि.ग्रा. बहुत ज्यादा होती है। इससे किसान का उत्पाद, प्रक्षेत्र से ही बिक जाता है। उसको बाजार ले जाए बिना ही उत्पाद की अच्छी कीमत भी मिल जाती है। आज कई वर्षों से प्याज का निर्यात करके भारत देसी-विदेशी मुद्रा का अर्जन करता है। इससे देश की आर्थिक स्थिति में भी सुधार हो रहा है। उत्तर प्रदेश के बुन्देलखंड क्षेत्र में आज भी किसान को प्याज की अच्छी प्रजातियों के बारे में जानकारी न होने से किसान पुरानी किस्म को निरंतर

लगाते आ रहे हैं। साथ ही उचित तकनीकी ज्ञान न होने की वजह से गुणवत्तायुक्त उत्पादन नहीं कर पाते हैं। इस वजह से उनको अच्छी आमदनी प्राप्त नहीं हो पाती है। यहां की मृदा में सल्फर की अधिकता होने के कारण प्याज के उत्पादन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इससे खरीफ तथा रबी मौसम में प्याज का अच्छा उत्पादन लिया जा सकता है। प्याज में सल्फर की वजह से उसकी गुणवत्तायुक्त गांठ का उत्पादन होता है तथा प्याज की भंडारण क्षमता भी बढ़ जाती है।

खरीफ में उत्पादन के लिए प्रजाति का चुनाव

विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय तथा भाकृअनुप की संस्थाओं द्वारा विकसित की गई प्याज की उन्नत प्रजाति का अपने प्रक्षेत्र पर उत्पादन करके किसान अपनी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को सुधार सकते हैं। प्याज की प्रजातियां जैसे एग्रीफाउंड डार्क रेड, लाईन-883, भीमा डार्क रेड, भीमा सुपर, भीमा रेड, भीमा राज, फुले सामर्थ्य, अर्का कल्याण एन-53, वसवंत-780 इत्यादि को अपने प्रक्षेत्र पर लगाकर अच्छा उत्पादन ले सकते हैं।

बुआई का समय तथा बीज की मात्रा

खरीफ मौसम में बीज की बुआई मई-जून में, पौध रोपण अगस्त में तथा खुदाई नवंबर-दिसंबर तक करते हैं। खरीफ के लिए बुआई अगस्त-सितंबर में, पौध रोपण सितंबर-अक्टूबर में तथा खुदाई जनवरी-फरवरी तक करते हैं। 7-8 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर प्रक्षेत्र के लिए पर्याप्त होता है।

मृदा

साधारणतया बलुई दोमट मृदा से लेकर चिकनी दोमट मृदा की संस्तुति प्याज के लिए की जाती है। सर्वोत्तम पी-एच मान 6.5-7.5 के बीच होना चाहिए। वैसे प्याज की फसल को किसी भी कई प्रकार की मृदा में उगा सकते हैं। प्याज की अच्छी फसल के लिए मृदा में पानी के निकास का होना बहुत आवश्यक है।

प्याज की फसल में पलवार का उपयोग

खरीफ प्याज उत्पादन की तकनीकी

प्याज की अच्छी पैदावार एवं गुणवत्ता के लिए सही उत्पादन तकनीकी का होना आवश्यक है। प्याज की अच्छी फसल के लिए 13^0-24^0 सेल्सियस तापमान शल्क कंद बनने से पहले और लगभग 20^0-25^0 सेल्सियस कंदों के विकास के लिए उपयुक्त होता है। वैसे प्याज की खेती उच्च तापमान वाले क्षेत्रों में भी की जा सकती है। वानस्पतिक वृद्धि के समय जब वर्षा होती है, तो बैंगनी धब्बा एवं झुलसा रोग के लिए उपयुक्त वातावरण होता है, जिसके प्रभाव से शल्क कंद अच्छे नहीं बन पाते हैं। जब गांठों का विकास होता है, तब तापमान कम होने पर फूल के डंठल निकल आते हैं। अचानक तापमान बढ़ने से गांठें पूरी तरह विकसित हुए बिना परिपक्व हो जाती हैं। पौधों की सर्वोत्तम वृद्धि के लिए 20^0-25^0 सेल्सियस तापमान तथा आर्द्रता 70 प्रतिशत कंद के विकास में सहायक है। प्रकाश अवधि की आवश्यकता अलग-अलग प्रजातियों में भिन्न होती है। खरीफ मौसम वाली प्रजातियों के लिए 10-11 घंटे की प्रकाश अवधि की आवश्यकता होती है।

गठियां द्वारा रोपण विधि

जहां पर खरीफ मौसम में वर्षा ज्यादा होती है वहां पर यह तकनीक उपयोगी सिद्ध होती है। खरीफ की अगेती फसल के लिए खरीफ की प्रजाति जैसे एग्रीफाउंड डार्क रेड, लाइन-883, वसवंत-780, एन-53 इत्यादि की गर्मी के मौसम में छोटी-छोटी गठियां बनाई जाती हैं और उन्हें वर्षा के बाद मेड़ पर लगाते हैं।

गठियां बनाने के लिए 10-12 ग्राम बीज को प्रति वर्ग मीटर ऊंची उठी हुई या समतल क्यारियों में बोया जाता है। कार्बोफ्यूरॉन 1 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से थ्रिप्स की रोकथाम के लिए मृदा में मिला देते हैं। अच्छी गठियां बनाने के लिए बुआई का समय मध्य जनवरी से लेकर फरवरी तक होता है। गठियां तैयार करने के लिए अन्य क्रियायें लगभग वही हैं, जो पौध तैयार करने के लिए होती हैं। पौध को पौधशाला में अप्रैल-मई तक या तब तक रहने देते हैं जब तक पत्तियां न गिर जायें, बाद में पत्तियों सहित इसकी जुताई कर देते हैं। भंडारण में सड़न से नुकसान रोकने के लिए बड़ी पौध में कार्बोन्डाजिम 0.10 के घोल का छिड़काव खुदाई के 10-15 दिनों पहले कर देना चाहिए। 1.5 से 2.5 सें.मी. व्यास की चुनी हुई गठियां को अगस्त तक हवादार कमरे में लटकाकर भंडारित करते हैं। लगभग 26-28 क्विंटल गठियां जिसका आकार 1.5-2.5 सें.मी. का होता है एक हैक्टर में लगाने के लिए पर्याप्त होती है। अच्छे कंद विकास एवं उपज के लिए गठियों को ब्राड बैड फरो

प्याज की फसल

(बीबीएफ) पद्धति द्वारा, मेड़ पर रोपण किया जाना चाहिए। गठियां का रोपण मैदानी भागों में अगस्त में किया जाना चाहिए। 2.5 सें.मी. से बड़े आकार की गठियों को लगाने पर पुष्पदंड निकलते हैं और कंद की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। गठियों को रोपण से पहले कार्बेन्डाजिम 0.10 प्रतिशत या मोनोक्रोटोफॉस 0.10 प्रतिशत के घोल में डुबोकर उपचारित करने से गठियां ज्यादा स्थापित होती हैं। गठियों के रोपण के लिए लाइन से लाइन 20 सें.मी. तथा गठियों से गठियों को दूरी 10 सें.मी. उपयुक्त मानी गई है।

खेत की तैयारी

भूमि को सुविधानुसार 3-4 बार ट्रैक्टर या हल से जुताई करके भुरभुरी बनाएं। पाटा चलाकर समतल कर लें तथा छोटी-छोटी क्यारियों में बांट लें। साधारणतया क्यारियों की चौड़ाई 1.8 मीटर रखते हैं, क्यारी की चौड़ाई ऐसी होनी चाहिए, जिससे मेड़ों पर बैठकर निराई, गुड़ाई एवं अन्य कृषि क्रियायें की जा सकें। खरीफ मौसम में पानी रुकने की समस्या के कारण रोपाई ऊंची उठी क्यारियों में करनी चाहिए।

पौध की रोपाई एवं दूरी

खरीफ एवं अगेती खरीफ के पौध की रोपाई ऊंची उठी क्यारियों या मेड़ों के दोनों किनारों पर करने से अच्छा परिणाम मिलता है। खरीफ मौसम में पौध के रोपण से पूर्व पौध की जड़ों को कार्बेन्डजिम 0.10 प्रतिशत एवं मोनोक्रोटोफॉस (0.10 प्रतिशत) के घोल में 10-15 मिनट डुबोकर रोपाई करने से पौध को ज्यादा से ज्यादा स्थापित होने में सहायता मिलती है। सामान्यत: बड़ी गांठ वाली प्याज के लिए 15-10 सें.मी. की संस्तुति की गई है।

प्याज की बम्पर फसल

प्याज रोपण के 15, 30, और 45 दिनों के बाद एनपीके (19:19:19)/1 प्रतिशत और एनपीके (13:0:46)/1 प्रतिशत का 60, 75 और 90 दिनों के बाद पर्णीय छिड़काव करने से उपज में बढ़ोतरी तथा भंडारण में कम नुकसान देखा गया है। सल्फर का पर्णीय छिड़काव पौध रोपण में 15, 45, और 60 दिनों के बाद करने से गुणवत्तायुक्त कंद की प्राप्ति होती है।

सिंचाई प्रबंधन

प्याज एक उथली जड़ वाली फसल है। इसकी जड़ें साधारणतया जमीन की सतह से 3-5 सें.मी. तक सीमित होती हैं व कभी-कभी 15 सें.मी. तक भी पहुंच जाती हैं। वर्षा ऋतु या खरीफ मौसम में एक सिंचाई रोपाई के तुरंत बाद करते हैं। बुन्देलखंड में जहां तापमान काफी ऊंचा रहता है, यह देखा गया है कि यदि किसी कारणवश सिंचाई में देरी हो जाती है तो 80-90 प्रतिशत पौधे मर जाते हैं। पौध की सिंचाई बरसात पर निर्भर करती है। आमतौर पर बरसात में 5-7 सिंचाई पर्याप्त होती हैं व गांठें बनते समय सिंचाई की आवश्यकता अधिक होती है। ऐसे अवसर पर पानी की कमी पैदावार को काफी प्रभावित करती है। वर्तमान समय में सूक्ष्म सिंचन तकनीकी द्वारा प्याज की सिंचाई करना लाभदायक पाया गया है। इसके अंतर्गत टपक सिंचाई अथवा तुषार सिंचन दोनों ही विधियां उपयुक्त होती हैं। इससे उत्पादन और गुणवत्ता अच्छी होती है, साथ ही 40 प्रतिशत पानी की बचत होती है, जो कि अन्य क्षेत्र के लिए उपयोग किया जा सकता है। इसके लगाने में हुए व्यय की पूर्ति बचत किए गए पानी से की जा सकती है।

खुदाई

पौध लगाने के बाद प्याज को अलग-अलग प्रजातियों के अनुसार तैयार होने में 65 से 125 दिनों तक का समय लग जाता है। हरी प्याज के रूप में खुदाई के लिए प्याज की खुदाई तब होती है, जब वे खाने योग्य हो जाएं। यह अवस्था रोपाई के लगभग 45-60 दिनों में आ जाती है। तब पौधों को हाथ से उखाड़ लेते हैं, जड़ें काट देते हैं और बाहरी छिलके को निकाल देते हैं। पत्तियों और गांठों को धोकर साफ कर दिया जाता है। इसके बाद छांटकर बंडलों में बांध लेते हैं, बंडलों का वजन बाजार के मांग के अनुसार होता है।

खरीफ मौसम में प्याज की पत्तियां गिरती नहीं हैं। इसलिए गांठों की खुदाई उस समय करते हैं, जब पत्तियों का रंग थोड़ा सा पीला होने लगता है, ऊपर से पत्तियां सूखने लगती हैं, गांठों का रंग लाल हो जाता है तथा प्रजाति का सही आकार विकसित हो जाता है। खुदाई के बाद पत्तियों सहित गांठों को पत्तियों से ढककर रखते हैं इससे कंद में रंग तथा त्वचा का विकास होता है, जिससे बाजार भाव ज्यादा मिलता है। पत्तियों को गांठों के बहुत

प्रवर्धन-पौध तैयार कर रोपण

प्याज के बीज की 15-25 सें.मी. ऊंची उठी हुई 3 मीटर लंबी और 75 सें.मी. चौड़ी नर्सरी बनाई जाती है। दो क्यारियों के बीच में लगभग 50-70 सें.मी. की दूरी होनी चाहिए, जिससे आसानी से कृषि क्रियायें की जा सकें। क्यारियां समतल होनी चाहिए जिससे 5-7 सें.मी. की कतार बनाकर बीज की बुआई की जा सके। बुआई के पहले बीज को उपचारित करें। जिस खेत में नर्सरी की बुआई करनी हो बुआई से 15-20 दिनों पहले सिंचाई करके वहां 250 गेज की पारदर्शी पॉलीथीन बिछा देनी चाहिए, जिससे भूमि का सौरीकरण हो जाये। इससे खेत के हानिकारक कीट एवं रोगाणु एवं खरपतवार के बीज नष्ट हो जाते हैं। 4-5 ग्राम बीज की प्रति वर्ग मीटर की दर से बुआई करनी चाहिए। बुआई के बाद बीज को बारीक छनी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट से ढक दें। फिर फव्वारे से सिंचाई कर क्यारियों को सूखी घास या पुआल से या गन्ने की सूखी पत्तियों से ढक दें, जिससे आवश्यक नमी और तापमान बना रहे। यदि पौधशाला में आर्द्र गलन रोग लगता है तो थाईरम फफूंदनाशक दवा से 2-3 ग्राम/लीटर पानी की दर से दो बार ड्रेन्चिंग करें। खरीफ मौसम में पौध को उस समय तैयार समझना चाहिए, जब वह 40-45 दिनों की हो जाये।

नजदीक से नहीं काटना चाहिए, नहीं तो मुंह खुला रह जाता है। इससे रोग के कीटाणु और रोगाणु आसानी से गांठों को नुकसान पहुंचा सकते हैं। अपरिपक्व गांठों की खुदाई होने पर है तो फुटाव से नुकसान अधिक होता है। देर से खुदाई करने पर जुड़वां गांठ बनती हैं तथा फिर से जड़ निकलती हैं और फूल के डंठल भी निकलते हैं।

पैदावार

उपज प्रजातियों पर निर्भर करती है, लेकिन सामान्यत: बरसात की प्याज उपज 180-300 क्विंटल/हैक्टर तक प्राप्त हो जाती है।

फसल संरक्षण

बैंगनी धब्बा

यह आल्टरनेरिया पोरी नामक फफूंद से होता है। इस रोग का लक्षण प्याज की पत्तियों पर सफेद भूरे रंग के धब्बे बना देता है। इसका मध्य भाग बैंगनी रंग का होता है, जब तापमान 26^0-30^0 सेल्सियस होता है। इसका प्रकोप बढ़ जाता है। इसकी रोकथाम के लिए थाईराम या कैप्टॉन नामक दवा 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. से बीज का शोधन कर बुआई करनी चाहिए। मैन्कोजेब 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर चिपकने वाले पदार्थ जैसे संडोविट 0.06 प्रतिशत के दर से छिड़काव करना चाहिए।

आर्द्रगलन

यह नर्सरी (पौधशाला) का प्रमुख रोग है। यह रोग फ्यूजेरियम ऑक्सीपोरम नामक फफूंद के कारण होता है। इससे लगभग 60-70 प्रतिशत तक नुकसान होता है। यह रोग दो अवस्थाओं में होता है, पहली अवस्था में भूमि की सतह से बीज का अंकुरण निकलने से पहले ही यह रोग लग जाता है। इससे पौधा भूमि की सतह से ऊपर आने से पहले ही मर जाता है। दूसरी अवस्था में अंकुरण होने के 10-15 दिनों बाद इस रोग का प्रकोप होता है। पौध के भूमि की सतह पर लगे हुए भाग पर सड़न दिखाई देती है। बाद में पौधा इसी सतह से गिरकर सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए थाईरम 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। पौधों की जड़ों के पास कॉपर ऑक्सी क्लोराइट 2 ग्राम/लीटर की दर से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। ट्राईकोडरमा विरडी नामक जैविक फफूंद 5 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से भूमि में बीज बोने से पहले मिलाना चाहिए।

पुष्ट प्याज की मिलती है अधिक कीमत

पोषक तत्व और खरपतवार नियंत्रण

20-25 टन/हैक्टर गोबर की खाद या 3 टन वर्मीकम्पोस्ट की खाद की संस्तुति की जाती है, जो प्याज उत्पादन के लिए अच्छी होती है। इस खाद को बुआई के एक महीने पहले खेत की अन्तिम जुताई के समय मिला दिया जाता है। 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 कि.ग्रा. पोटाश तथा 30 कि.ग्रा. सल्फर देने की सिफारिश की जाती है। फॉस्फोरस, पोटाश और सल्फर की पूरी मात्रा और नाइट्रोजन की आधी मात्रा पौध रोपण/बीज बुआई के पहले मृदा में मिला देनी चाहिए। शेष बची नाइट्रोजन को दो समान भागों में विभाजित करके पौध रोपण के 30 और 45 दिनों बाद खड़ी फसल में मिला देते हैं। खरीफ मौसम में खरपतवार जैसे-मोथा, दूब, बथुआ, चौलाई इत्यादि खेत में दिखाई देते हैं। प्याज का पौध-रोपण बहुत ही कम दूरी पर किया जाता है। फसल अपनी वानस्पतिक बढ़वार की दशा में हो तो खेत से खरपतवार निकालना कठिन हो जाता है और मजदूर की कमी के कारण यह काफी खर्चीला हो जाता है। इन सब कारणों को देखते हुए खरपतवारनाशक दवा जैसे ऑक्सीफ्लोरोफेन (गोल) का 1 मि.ली., क्यूजालोफोल इथाइल (टरगासुपर) 2 मि.ली./लीटर को मिलाकर प्याज के पौध रोपण के 21-25 दिनों के बाद खेत में छिड़काव किया जाये जो खरपतवार को नियंत्रित किया जा सकता है।

स्टेम्फीलियम झुलसा

यह रोग स्टेम्फेलियम बेसीकेरियम नामक फफूंद द्वारा होता है। प्रारंभ में छोटे सफेद और हल्के भूरे धब्बे बनते हैं, जो बाद में भूरे या काले हो जाते हैं। प्याज में यह धब्बे पत्ती के भीतरी सतह में फैल जाते हैं, जबकि बाहरी सतह हरी रहती है। इसकी रोकथाम के लिए बीज का शोधन कैप्टॉन या थाइरम से 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से करना चाहिए। फफूंदनाशक क्लोरोथैलोनिल 2.0 ग्राम/लीटर या मैन्कोजेब के 2.5 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर चिपकने वाले पदार्थ जैसे सन्डोविट 0.6 प्रतिशत की दर से छिड़काव करना चाहिए।

रसाद कीट

इस कीट के अभ्रक व वयस्क दोनों ही प्याज की पत्तियों को खुरचकर रस चूसते हैं। क्षतिग्रस्त पत्तियां चमकीली सफेद दिखती हैं, जो बाद में ऐंठकर और मुड़कर सूख जाती हैं। ऐसे पौधे के कंद छोटे रह जाते हैं और उपज में भारी कमी आ जाती है। इस कीट के प्रकोप से पौधे में अन्य रोग भी लगने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए प्रोफेनोफॉस 0.1 प्रतिशत या फिप्रोनिल 0.1 प्रतिशत अथवा स्पाइनोसेड 0.10 प्रतिशत की दर से तथा साथ में 0.6 प्रतिशत की दर से तथा साथ में 0.6 प्रतिशत स्टीकर सेण्डोविट मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

करौंदा से किसानों की अतिरिक्त कमाई

चंदन कुमार, मोती लाल मीणा और **धीरज सिंह**
भाकृअनुप-काजरी कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़-306401 (राजस्थान)

करौंदा शुष्क क्षेत्र बागवानी में छोटे तथा सीमान्त किसानों के लिए अत्यंत ही लाभकारी फल है। इसको कम प्रबंधन के साथ वर्षा सिंचित फसल के रूप में आसानी से लगाया जा सकता है। इस क्षेत्र में बार-बार अकाल की स्थिति से निपटने के लिए भी करौंदा अति उपयोगी फल है। यह फल लौह का प्रमुख स्रोत है, इसमें सभी फलों से अधिक लौह पाया जाता है। इसके अलावा इसमें कैल्शियम, विटामिन 'ए' और 'सी' भी पाया जाता है। करौंदे के कच्चे फलों का उपयोग सब्जी, चटनी एवं अचार बनाने में किया जाता है एवं पके फलों का जेली, मुरब्बा व स्क्वेश जैसे परिरक्षित पदार्थ बनाने में उपयोग होता है। इस तरह यह शुष्क क्षेत्र में ग्रामीण महिलाओं एवं प्रगतिशील किसानों के लिए स्वास्थ्य के साथ आय का महत्वपूर्ण स्रोत होता जा रहा है।

करौंदे का पौधा एक सदाबहार कांटेदार झाड़ीनुमा होता है। इसे अक्सर बाग के चारों तरफ मेड़ों पर बाड़ के रूप में उगाया जाता है। पूर्ण रूप से बढ़ जाने पर करौंदे का पौधा घनी कांटेदार झाड़ी बन जाता है। जंगली व पालतू जानवरों से बाग की रक्षा के अतिरिक्त यह फल भी देता है। करौंदे की झाड़ी भूमि की वायु व जलक्षरण से रक्षा करती है। इसे गृहवाटिका में भी उगाया जाता है। प्राकृतिक रूप से करौंदे की झाड़ी 3-6 मीटर ऊंचाई तक बढ़ती है। इनकी नई पत्तियों पर हल्की लालिमा पाई जाती है। फूल सफेद रंग के गुच्छों में और सुगंधित होते हैं व फल छोटे, हरे अथवा सफेद पृष्ठभूमि पर गुलाबी आभा लिए होते हैं।

औषधीय उपयोग

करौंदे के विभिन्न भागों का औषधि के रूप में भी उपयोग किया जाता है। इसकी जड़ के रस को लुम्बागों, छाती और गुप्त रोगों के उपचार के लिए प्रयोग किया जाता है। यह पेट के कीड़ों के उपचार के लिए बहुत उपयोगी है। इसकी पत्तियों का रस बुखार के उपचार के लिए और पत्तियों का टसर रेशम

के कीड़ों के चारे के रूप में प्रयोग होता है। इसकी लकड़ी का प्रयोग चम्मच और कंघा बनाने के लिए किया जाता है।

जलवायु एवं भूमि

करौंदा बहुत ही सहिष्णु झाड़ी है। अधिक सर्दी वाले क्षेत्रों को छोड़कर इसे उपोष्ण व ऊष्ण जलवायु में लगाया जा सकता है। इसे सभी प्रकार की भूमि में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। इसके लिए भूमि जल निकासयुक्त होनी चाहिए। करौंदे के पेड़ ऊसर भूमि में 10 पी-एच मान तक उगाए जा सकते हैं। रोपाई के बाद एक बार बढ़ जाने पर इसको विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

उत्पत्ति व वितरण

करौंदे का उत्पत्ति स्थान भारत है। इसकी खेती पूरे देश में सभी जगह की जाती है। इसके अलावा इसकी खेती दक्षिण अफ्रीका व मलेशिया में भी की जाती है। इसका पौधा झाड़ीनुमा होता है, जो लगभग 3-7 मीटर तक का होता है। पौधे में कांटे होने के कारण इसे सामान्यत: बाड़ में लगाते हैं। इसका पौधा सदाबहार हरा रहता है, जिसकी पत्तियां गोलाकार व चपटी हरी होती हैं।

किस्में

करौंदे की किस्मों का वर्गीकरण फलों के रंग के आधार पर किया गया है, जैसे हरी, लाल व सफेद किस्में। इनके फलों का आकार-प्रकार लगभग समान होता है। करौंदे की निम्नलिखित किस्में पाई जाती हैं:

कैरिसा ग्रैन्डीफ्लोरा

इसका फल गहरा लाल, छिलका पतला तथा इसके छोटे-छोटे गोल आकार के बीज होते हैं। फल की परिपक्वता पूरे वर्ष चलती रहती है। इसका रोपण घरेलू उपयोग के लिए लाभकारी होता है। यह विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत है, जिससे जेली का निर्माण अच्छा होता है।

कैरिसा इडूलिसा

यह बाड़ के लिए काफी उपयुक्त प्रजाति है। इसके फूल सफेद व हल्के लाल (गुलाबी) रंग के 10 से 15 की संख्या में गुच्छों में आते हैं व इसके फूल खुशबूदार होते हैं। फल गोलाकार व अंडाकार लाल रंग के होते हैं, जो पकने पर काले हो जाते हैं।

कैरिसा वोवैटा

इसका उत्पत्ति स्थान ऑस्ट्रेलिया है। फल छोटे होते हैं, इसका उपयोग जैम बनाने में होता है।

कैरिसा सिपिनड्रम

इसका उत्पत्ति स्थान भारत है। इसमें खाने योग्य छोटे-छोटे फल आते हैं। यह करौंदे की बहुत कठोर किस्म है। इसका उपयोग खराब व कंकरीली-पथरीली जमीन में उगाकर किया जा सकता है। यह बाड़, ऊसर भूमि व मृदा कटाव वाली भूमि में रोपाई के लिए उपयुक्त किस्म है।

गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक

बहुउपयोगी है करौंदा

करौंदे की उपयोगिता

करौंदा पैक्टिन, कार्बोहाइड्रेट व विटामिन 'सी' का अच्छा स्रोत है। इसके शुष्क फलों से 364 कैलोरी ऊर्जा, 2.3 प्रतिशत प्रोटीन, 2.8 प्रतिशत खनिज लवण, 9.6 प्रतिशत वसा, 67.1 प्रतिशत कार्बोज और 39.1 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम लौह मिलता है। अधपके फलों से चटनी, टार्ट, पुडिंग, सब्जी, स्क्वैश, सिरप व जेली बनाई जाती है। करौंदे के पके फलों को 2 प्रतिशत नमक से शोधित और सुखाकर परिरक्षित भी किया जा सकता है। फलों का प्रयोग मिठाइयों और पेस्ट्री आदि को सजाने के लिए चेरी के स्थान पर किया जाता है। करौंदे के फलों में लोहे की मात्रा अधिक होने के कारण इसे 'आयरन की गोली' के नाम से पुकारा जाता है। भारत ने इसके निर्यात की शुरूआत कर दी है। पके फलों से रंगीन वाइन भी बनाई जाती है। इस प्रकार करौंदा बाड़, फल, शोभाकारी व रक्षक झाड़ी के रूप में एक साथ उपयोगी है।

करौंदे के फल

पंत सुवर्णा

इसके पौधे ऊपर की तरफ बढ़ने वाले और झाड़ीनुमा होते हैं। इसके फल गहरी हरी पृष्ठभूमि पर हल्की भूरी आभा लिए हुए होते हैं। फल 2.25 × 1.66 सें.मी. आकार के होते हैं। एक फल का औसत भार 3.62 ग्राम होता है। प्रत्येक फल में औसतन 5.89 बीज पाए जाते हैं। गूदा 88.27 प्रतिशत, शुष्क भार 12.39 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 3.83 प्रतिशत, खटास 2.30 प्रतिशत और उपज 25 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी पाई जाती है। पकने पर फल गहरे भूरे रंग के दिखाई देते हैं। इन किस्मों के अलावा कोंकण बोल्ड, सीआईएसएच करौंदा 11, थार कमल, नरेन्द्र करौंदा-1 इत्यादि भी उन्नत किस्में हैं।

विश्वविद्यालय, पंतनगर द्वारा करौंदे की तीन किस्में चयन विधि द्वारा विकसित की गई हैं। इन किस्मों को लगाकर बागवान अच्छी उपज प्राप्त कर सकते हैं।

पंत मनोहर

इसके पौधे मध्यम ऊंचाई के अति घनी झाड़ीनुमा होते हैं। फल सफेद पृष्ठभूमि पर गहरी गुलाबी आभा लिए हुए 2.13×1.69 सें.मी., आकार के होते हैं। फल का औसत भार 3.49 ग्राम होता है और एक फल में 3-4 बीज पाए जाते हैं। फल में गूदा 88.27 प्रतिशत, शुष्क पदार्थ 12.77 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 3.92 प्रतिशत, खटास 1.82 प्रतिशत और उपज 35 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी होती है।

पंत सुदर्शन

इस किस्म के पौधे मध्यम ऊंचाई के और फल सफेद पृष्ठभूमि पर गुलाबी आभा लिए होते हैं। फल का आकार 2.16×1.69 सें.मी. और औसत भार 3.46 ग्राम होता है। औसत बीज संख्या 4, गूदा 88.47 प्रतिशत, शुष्क पदार्थ 11.83 प्रतिशत, कुल घुलनशील ठोस पदार्थ 3.45 प्रतिशत, खटास 1.89 प्रतिशत और उपज 32 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी होती है।

प्रवर्धन

करौंदे के पौधे मुख्यत: बीज से तैयार किए जाते हैं। अच्छी तरह पके हुए फलों से जुलाई-अगस्त में बीज निकालकर यथाशीघ्र पौधशाला में बुआई करते हैं। यदि बीजों को परस्पर भंडारित करना है तो छाया में सुखाकर व 2 ग्राम थायरम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से मिलाकर बोतल में रखना उपयुक्त रहता है। बीजों को अधिक दिनों तक रखने से उनकी अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। अत: जितना शीघ्र हो सके बीज की बुआई कर देनी चाहिए। नर्सरी में बीज जमने के बाद छोटे पौधों की खरपतवार, रोग व कीटों से रक्षा करनी चाहिए। बीजू पौधे एक वर्ष बाद

करौंदे की भरपूर उपज

बाग में रोपने योग्य हो जाते हैं। करौंदे के पौधे गूटी अथवा स्टूल दाब लगाकर भी तैयार किए जाते हैं। इन विधियों में हार्मोन का प्रयोग करना आवश्यक है। गूटी बांधने का उचित समय जुलाई है। गूटी के लिए इंडोल ब्यूटरिक अम्ल 5000 पीपीएम व स्टूल दाब के लिए 10000 पीपीएम सांद्रता के लेनोलिन लेप के साथ मिलाकर प्रयोग करना लाभकारी पाया गया है। करौंदे की 2-3 माह पुरानी शीर्षस्थ कलमों पर 8000 पीपीएम इंडोल ब्यूटरिक अम्ल को लेनोलिन लेप के साथ मिलाकर उपचारित करने के बाद कुहासाघर में रोपकर भी जड़ निकलने में सहायता मिलती है।

रोपाई

बाड़ लगाने के लिए करौंदे के पौधों को 60 सें.मी. की दूरी पर रोपना चाहिए। इसके लिए पहले से खोदे गए 30 घन सें.मी. आकार के गड्ढों को मृदा व अच्छी तरह से गोबर की सड़ी हुई खाद (1:3 अनुपात) में मिलाकर भरने के बाद पौधों को बीच में लगाते हैं। पौधा लगाने से पूर्व गड्ढों की एक सिंचाई भी करनी चाहिए, जिससे गड्ढों की मृदा बैठ जाये। बाग लगाने के लिए 50 घन सें.मी. आकार के गड्ढे खोदने चाहिए। गड्ढों की दूरी 3 मीटर रखनी चाहिए। करौंदा लगाने का उचित समय जून-जुलाई है। सिंचित क्षेत्रों में पौधे मार्च-अप्रैल में भी लगाए जा सकते हैं।

खाद व उर्वरक

करौंदा की झाड़ी बिना खाद व उर्वरकों के प्रयोग के अच्छी उपज देती है। प्रारंभिक वर्षों में नाइट्रोजन के प्रयोग से पौधे तेजी से बढ़ते हैं और बाड़ जल्दी तैयार हो जाती है। एक पौधे को 5 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी खाद व 100 ग्राम यूरिया प्रति वर्ष की दर से बढ़ाकर तीन वर्ष तक अवश्य देना चाहिए। यूरिया को 5 भागों में बांटकर दो माह के अंतर से देना उपयोगी रहता है। यूरिया का पेड़ के फैलाव में छिड़काव कर गुड़ाई कर देनी चाहिए।

सिंचाई व देखभाल

नये लगाए गए पौधे की गर्मियों में 7 दिनों व सर्दियों में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। पौधों की कीट व रोगों से रक्षा के लिए उपयुक्त छिड़काव समयानुसार करना चाहिए। तीन-चार वर्ष में पौधा अच्छी तरह पनप जाता है। इसके बाद विशेष देखरेख की आवश्यकता नहीं रहती है।

तुड़ाई व उपज

इसमें तृतीय वर्ष से फूल व फल आने शुरू हो जाते हैं। फरवरी में फूल आते हैं और फल अगस्त-सितंबर में पककर तैयार हो जाते हैं। एक ही समय पर सभी फल तोड़ना असंभव है। इसे दो या तीन बार में तोड़ते हैं, एक पौध औसतन 3-5 कि.ग्रा. फल देती है।

फलों का भंडारण

अपरिपक्व अवस्था में तोड़े गए फलों को एक सप्ताह तक भंडारित किया जा सकता है, जबकि पके हुए फलों को 2-3 दिनों तक ही भंडारित किया जा सकता है। रासायनिक उपचार जैसे कि 200 पीपीएम सल्फर डाइऑक्साइड के घोल से उपचारित फलों को 6 महीनों तक भंडारित किया जा सकता है।

कीट व रोग

प्रारंभिक अवस्था में पत्ती खाने वाली गिडार नई पत्तियों को खा जाती है, जिससे पेड़ की बढ़वार रुक जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 2 मिली. थायोडान अथवा 1 मि.ली. नुवान एक लीटर पानी में घोलकर झाड़ियों पर छिड़कना चाहिए। करौंदे में श्यामव्रण रोग पत्तियों और फलों को अधिक प्रभावित करता है। रोगग्रस्त पत्तियों पर छोटे अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बे बनते हैं, जो बाद में बढ़कर गहरे भूरे रंग के हो जाते हैं। रोगी पत्तियां गिर जाती हैं और पतली टहनियां सूखना प्रारंभ कर देती हैं। फलों व तनों पर भी इस रोग के घाव बन जाते हैं। रोग की रोकथाम के लिए 2 ग्राम ब्लाइटॉक्स 50 या फाइटोलान नामक रसायन को एक लीटर पानी में घोलकर झाड़ियों पर छिड़कना चाहिए। तने के घावों को खुरचकर उन पर ब्लाइटॉक्स-50 व अलसी के तेल (1:3) का लेप बनाकर लगाना चाहिए।

टमाटर मूल्य संवर्धन

प्रेरणा नाथ और **एस.जे. काले**
बागवानी फसल प्रसंस्करण प्रभाग
भाकृअनुप-केन्द्रीय कटाई उपरांत अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, अबोहर-152116

दुनिया भर में टमाटर एक महत्वपूर्ण सब्जी है। टमाटर विटामिन, खनिज, कैरोटीनॉयड और विशेष रूप से विटामिन 'सी', फॉस्फोरस, पोटेशियम और लाइकोपिन के समृद्ध स्रोत के रूप में जाना जाता है। इससे टमाटर का पाउडर, टमाटर का पेस्ट और अन्य टमाटर उत्पादों को बनाया जा सकता है। यह विभिन्न मैक्रो और माइक्रो खनिज तत्वों का भी अच्छा स्रोत है। टमाटर की उत्पत्ति अमेरिका में हुई थी और वहां से 16वीं शताब्दी में यह विश्वभर में फैल गया। अलग-अलग क्षेत्रों में इस फसल को विभिन्न नामों से जाना जाता है जैसे कि भारत में टमाटर, फ्रांस में टोमेटो और चाइना में फानकी। टमाटर देश की दूसरी सर्वाधिक उपजाई जाने वाली सब्जी की फसल है।

ताजा टमाटर विटामिन और खनिज तत्वों का एक अच्छा स्रोत है, विशेष रूप से एस्कॉर्बिक एसिड। यह एक कम अवधि में तैयार होने वाली सब्जी फसल है और व्यापक रूप से इस्तेमाल की जाने वाली सब्जी फसलों में से एक है। टमाटर की मौसमी अत्यधिक आवक के कारण किसान फसल का अच्छा मूल्य नहीं ले पाते और उचित प्रसस्करण और भंडारण की सुविधा की कमी के कारण फसल का एक बड़ा हिस्सा बर्बाद हो जाता है।

टमाटरों को प्रसंस्करित उत्पादों की एक विस्तृत श्रृंखला के निर्माण के लिए भी उपयोग किया जाता है, जैसे कि टमाटर की प्यूरी, सॉस, पाउडर इत्यादि। टमाटर और टमाटर के उत्पाद स्वास्थ्य संबंधी खाद्य घटकों में समृद्ध हैं। ये कैरोटीनोड्स (विशेष रूप से, लाइकोपिन), एस्कॉर्बिक एसिड (विटामिन 'सी'), विटामिन 'ई', फोलेट, फ्लेवोनोइड और पोटेशियम के अच्छे स्रोत हैं। टमाटर में मुख्य प्रतिऑक्सीकारक के रूप में एस्कॉर्बिक एसिड और फिनालिक मौजूद होते हैं। लाइकोपिन टमाटर को उसका लाल रंग भी प्रदान करता है। हालांकि प्रसंस्करित सब्जियों के बीच टमाटर के उत्पादों का पहला स्थान होने के बावजूद यह उद्योग देश में अच्छी तरह से प्रगति नहीं कर रहा है। कुल टमाटर उत्पादन का केवल 1-2 प्रतिशत भाग ही मूल्यवर्धित उत्पाद बनाने में उपयोग किया जाता है। ये प्रसंस्करित उत्पाद देश एवं विदेश के बाजारों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं।

टमाटर एक बहुपयोगी सब्जी फसल है, जिसका उपयोग विभिन्न व्यंजनों को बनाने में किया जाता है। विश्वभर में बढ़ती जनसंख्या के कारण इसकी मांग भी लगातार बढ़ रही है। यह फसल खेतों एवं पॉलीहाउस में उगायी जाती है। टमाटर की फसल बहुत ही उपयोगी फसल है, जो सम्पूर्ण भारत में वर्षभर सफलतापूर्वक उगाई जाती है। इसका उपयोग ताजा कच्चे रूप में भी किया जाता है। ताजी अवस्था में इसे सलाद, सैण्डविच, सूप या सब्जी के रूप में खाया जाता है। टमाटर को सूर्य की रोशनी में सुखाकर पतले-पतले फांकों में भी तैयार किया जा रहा है, जो कि खाद्य उद्योगों में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस प्रकार टमाटर को बेमौसम भी उपलब्ध कराया जा सकता है।

टमाटर की प्रजातियां

टमाटर की विभिन्न प्रजातियों में

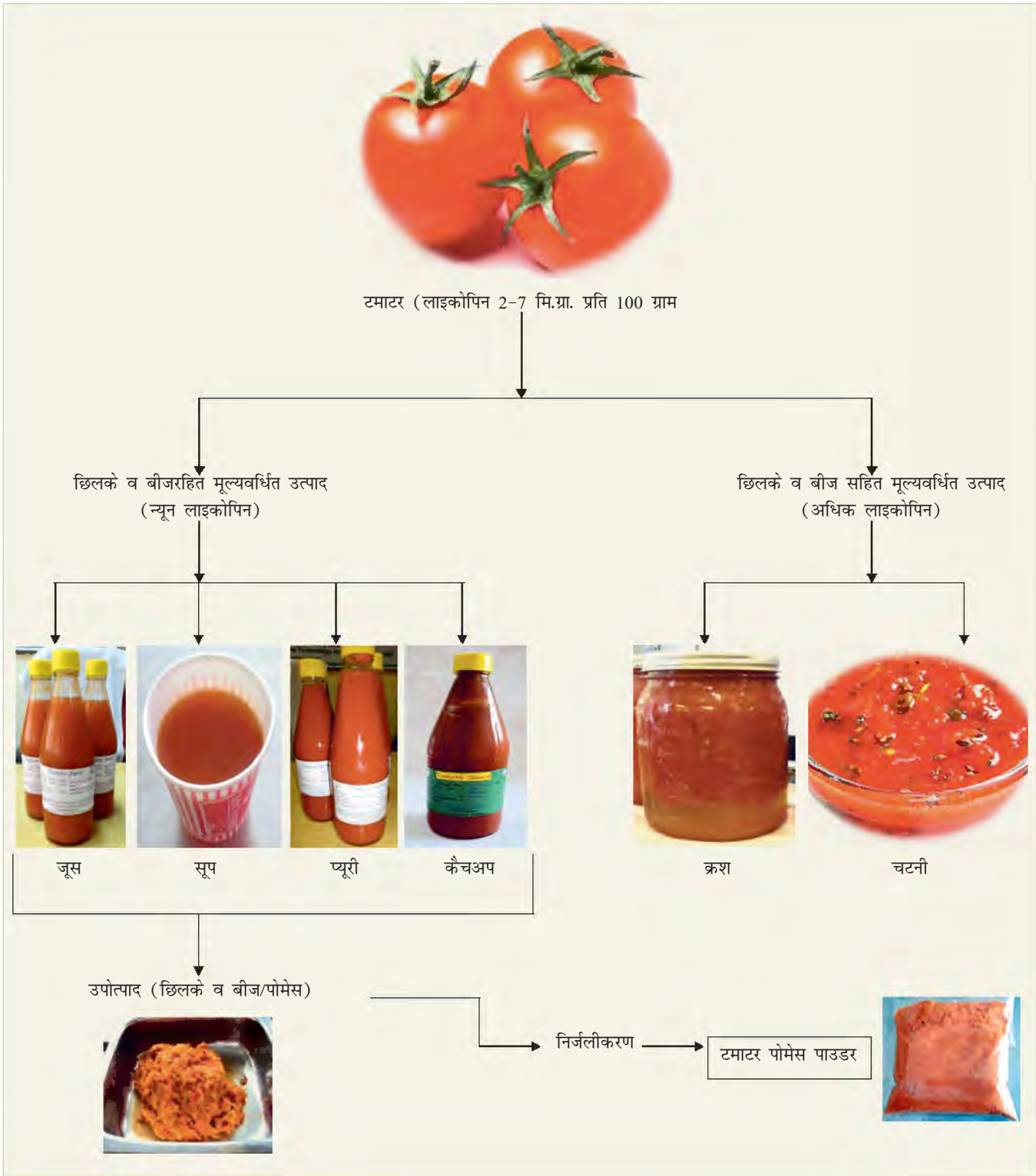

टमाटर प्रसंस्करण उद्योग

लाइकोपिन की मात्रा 0.21-7.95 मि.ग्रा. /100 ग्राम और विटामिन-'सी' की मात्रा 12.3-18.7 मि.ग्रा./100 ग्राम पाई गई है। टमाटर की जंगली प्रजातियां जैसे कि ईसी-520078, ईसी-7520076 में लाइकोपिन की अधिक मात्रा पाई जाती है। इसी क्रम में जंगली प्रजातियां ईसी-520078 में विटामिन-'सी' की अधिक मात्रा पाई जाती है।

टमाटर का प्रसंस्करण उद्योग

टमाटर की मौसमी उपलब्धता और कम बढ़वार अवधि होने के कारण, इसका प्रसंस्करण और संरक्षण अति आवश्यक होता है। फलों और सब्जियों के प्रसंस्करण उद्योग में कुल टमाटर का लगभग 1.5 से 2 प्रतिशत प्रयोग किया जाता है। इससे प्रसंस्करित उत्पाद जैसे कि जूस, पेस्ट, कैचअप, सॉस, चटनी, अचार आदि बनाए जाते है। ये मूल्यवर्धित उत्पाद पारंपरिक तरीकों से बनाए जाते हैं जैसे कि डिब्बाबन्दी, निर्जलीकरण, अचार के रूप में।

इन उत्पादों को तैयार करने के लिए टमाटर विभिन्न प्रसंस्करण प्रक्रियाओं से गुजरता है जैसे कि गूदा निकालना, गाढ़ा करना आदि। इसके अलावा कुछ रासायनिक परिरक्षकों और स्वाद बढ़ाने वाले तत्वों, चीनी, अम्ल, सिरका, मसालों आदि का इस्तेमाल भी किया जाता है।

प्रसंस्करण योग्य टमाटर

टमाटर पोमेस पाउडर

प्रसंस्करण प्रक्रिया

टमाटर पहले पानी में धोये जाते हैं और फिर स्टीम जैकेटिड कैटेल्स में उबाले जाते हैं। उबालने के बाद ये पल्पर में डाले जाते हैं जहां टमाटर की त्वचा और बीज गूदे से अलग किए जाते हैं। टमाटर का गूदा एक मूल सामग्री के रूप में प्रयोग किया जा सकता है, जिससे अन्य उत्पाद बनाए जा सकते हैं।

टमाटर का रस बनाने के लिए ताजा

सारणी 1 टमाटर आधारित महत्वपूर्ण जानकारी

टमाटर के क्षेत्रीय नाम	
क्षेत्र, देश	नाम, संबोधन
स्पेन, फ्रांस	टोमेट
इंडोनेशिया	टोमेटो
चीन	फानकी
दक्षिण अफ्रीका	टोमाटी
मैक्सिको	जीटोमेट/टोमाटी
इटली	पोमाडोरी
टमाटर का वानस्पतिक विवरण	
वानस्पतिक नाम	सोलानम लाईकोपरसिकम ल.
क्रम	सोलानेलज
वंश	सोलानेसि

टमाटर का आयुर्वेदिक वर्णन

- दृष्टि सुधार एवं मोतियाबिंद को रोकने में सहायक
- पित्ताशय में पथरी बनने से रोकना
- उच्च रक्तचाप में उपयोगी
- पाचन स्वास्थ्य के लिए लाभकारी
- मधुमेह के प्रबंधन में मददगार
- मूत्रपथ के संक्रमण को रोकना
- धूम्रपान के बुरे प्रभाव को कम करना
- कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करता है और दिल की रोगों से रक्षा करना
- फेफड़े और मुंह के कैंसर को रोकने में सहायक
- प्रतिरक्षा प्रणाली और ऊर्जा के स्तर को बढ़ाना
- वजन घटाने में सहायक

टमाटर उगाने के लिए आवश्यकताएं

टमाटर एक गर्म मौसम की फसल है जिन इलाकों में पाला न पड़ता हो या कम पड़ता हो वहां इसकी फसल बहुत अच्छी होती है। धूपे वाले इलाकों में टमाटर की फसल अच्छी तरह पकती है। इस फसल को अधिक वर्षा से भी नुकसान होता है तथा सफलतापूर्वक नहीं उगाया जा सकता:

- टमाटर के पौधे 12.5^0 सेल्सियस पर भी अंकुरित हो जाते हैं। अंकुरण के लिए $15-30^0$ सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है।
- पौधों को उचित वृद्धि के लिए $20-25^0$ सेल्सियस तापमान चाहिए।
- अधिक तापमान पर टमाटर के फूल व फल गिर जाते हैं, जिससे किसान को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।
- लू चलने पर नुकसान बढ़ जाता है।
- 38^0 सेल्सियस से ज्यादा तापमान में अधिक अंकुरण के कारण फलों का स्वरूप भी बिगड़ जाता है एवं फल चपटे दिखने लगते हैं।

प्रसंस्करण के दौरान ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण जानकारी

- पके हुए लाल टमाटरों का ही प्रयोग करें। किसी भी प्रकार का गला-सड़ा हिस्सा काटकर अलग कर दें।
- तैयार जूस को गर्म-गर्म ही बोतलों में भरें। बोतलों का किसी साफ एवं शुष्क जगह पर भंडारण करें।
- प्रसंस्करित उत्पाद बनाने के लिए स्टेनलेस स्टील के बर्तनों का ही इस्तेमाल करें।
- फल उत्पादों को सूखे एवं साफ बर्तन में ही संग्रहित करें।
- फलों को सुखाने के लिए धूप की बजाय ड्रायर का प्रयोग करने से पोषक तत्वों एवं प्राकृतिक रंगों को हानि कम होती है।
- पैकिंग करने के लिए इस्तेमाल होने वाली सामग्री ताप सहने और प्रिंट करने योग्य होनी चाहिए।
- कैचअप में एक तिहाई चीनी शुरू में ही मिला देनी चाहिए, ताकि उसका लाल रंग बरकरार रहे। शेष भाग तैयार होने से थोड़ी देर पहले मिला देनी चाहिए।
- टमाटर की प्यूरी और पेस्ट के लेबल पर कुल ठोस घुलनशील की मात्रा अवश्य होनी चाहिए।

टमाटरों को उबालने की बजाए सीधे स्टेनलैस स्टील केटल्स में प्रसंस्करण किया जाता है। सॉस तैयार करने के लिए रस को वैक्यूम और नियंत्रित तापमान के तहत केन्द्रित किया जाता है। नमक, शक्कर, सिरका, मसाले, प्याज आदि आवश्यकता अनुसार डाले जाते हैं। यह मिश्रण वैक्यूम में उबाला जाता है जब तक इसमें न्यूनतम 12 प्रतिशत टमाटर ठोस और 28 प्रतिशत कुल ठोस मौजूद नहीं होते। सॉस को छाना जाता है और अन्य रसेदार तत्व निकाल दिए जाते हैं। पैकिंग के लिए इसे भेजने से पहले इसमें परिरक्षक डाला जाता है।

कैचअप तैयार करने की प्रक्रिया भी इसके समान है, लेकिन इसमें अदरक, लहसुन, लौंग, काली मिर्च आदि जैसे कई मसाले डाले जाते हैं। नमक, चीनी, सिरका और वर्ग 2 संरक्षक भी डाले जाते हैं। टमाटर का पेस्ट और प्यूरी तैयार करने के लिए टमाटर के रस को 9 से 12 प्रतिशत ठोस पदार्थों तक की अवस्था में वैक्यूम की सहायता से लाया जाता है। टमाटर पाउडर विभिन्न तकनीकों का उपयोग करके तैयार किया जा सकता है।

टमाटर पोमेस पाउडर

टमाटर पाउडर, जैसा कि नाम से पता चलता है, व्यापक अर्थ में निर्जलित टमाटर का रस है। टमाटर पाउडर तैयार करने के लिए इसके रस का निर्जलीकरण विभिन्न तरीकों से किया जा सकता है। व्यावसायिक रूप से टमाटर के रस को अलग-अलग सूखने वाले तरीकों का उपयोग करके पाउडर में परिवर्तित किया जा सकता है।

सारणी 2. टमाटर की पोषक गुणवत्ता

पोषक तत्व	मात्रा प्रति 100 ग्राम
ऊर्जा, कैल	20.0
जल, ग्राम	94.1
फैट, ग्राम	0.3
कुल कार्बोहाइड्रेट, ग्राम	0.6
फाइबर ग्राम	0.6
ऐश, ग्राम	11.6
खनिज पदार्थ	
कैल्शियम, मि.ग्रा.	27.0
फॉस्फोरस, मि.ग्रा.	0.6
लोहा, मि.ग्रा.	1100.0
विटामिन	
विटामिन 'ए' (आईयू)	0.06
थाइमिन, मि.ग्रा.	0.04
रिबोफ्लेविन, मि.ग्रा.	0.5
नियासिन, मि.ग्रा.	23.0

टमाटर के पोषक तत्वों की रचना

उच्च पोषण मूल्य और पाक कला के नए-नए प्रयोगों ने टमाटर को एक महत्वपूर्ण सब्जी बना दिया है। फल में एक बाहरी दीवार होती है, जिसे पैरीकार्प कहते हैं। इसमें जैली की तरह पैरेन्काइमा ऊतक में नाल से उत्पन्न बीज होते हैं। पैरीकार्प में तीन अलग-अलग वर्ग होते हैं: एपिडर्मिस, क्यूटीनाइज्ड सेल की एक सरल परत एपिकार्प जिसमें कोलनकायमा कोशिकाओं की 3 या 4 परतें शामिल हैं और मीजोकार्प। इसमें, पैरेन्कायमा टिशु शामिल होते हैं। पेरिकार्प, फल का लगभग 45 प्रतिशत हिस्सा होता है। रेडियल दीवारें और कोर 35 प्रतिशत हिस्सा होते हैं। 25 प्रतिशत में लोक्युलर कैवीटीज होती है।

टमाटर का संयोजन और पोषण संबंधी महत्व उसकी विविधता, परिपक्वता, कृषि जलवायु परिस्थितयों पर निर्भर करता है। कच्चे टमाटर की समीपस्थ संरचना और पोषक मूल्य सारणी-1 में दिए गए हैं। टमाटर में आमतौर पर कुल ठोस पदार्थों की संख्या 7 से 8.5 प्रतिशत होती है। इसमें अम्लता 0.2 से 0.6 प्रतिशत तक होती है, जिसमें साइट्रिक एसिड का एक बड़ा हिस्सा होता है (लगभग 60 प्रतिशत)। टमाटर का पी.एच. कुल अम्लता से संबंधित है। टमाटर, विटामिन 'ए', 'बी'-विटामिन और एस्कॉर्बिक एसिड का अच्छा स्रोत है। टमाटर को एस्कॉर्बिक अम्लता का सबसे अच्छा और भरोसेमंद स्रोत माना गया है। टमाटर के फल का लाल रंग कैरोटिनॉइड के कारण होता है, जिसमें लगभग 87 प्रतिशत लाइकोपिन शामिल होते हैं।

सारणी 3. टमाटर के उत्पादों के लिए एफपीओ द्वारा परिचालित विवरण

उत्पाद	न्यूनतम कुल घुलनशील ठोस (प्रतिशत)	यंत्र प्रयोजन
टमाटर का जूस	5	
टमाटर का सूप	7	
टमाटर की प्यूरी	9	क्रॉउन कोर्किंग यंत्र बोतल को सील करने के लिए
टमाटर का पेस्ट	25	
टमाटर की कैचअप	25 (एसिटिक एसिड जैसे न्यूनतम अम्लता, 0.1 प्रतिशत)	कॉन्सेन्ट्रेटर (इलेक्ट्रिक केटल) टमाटर को गर्म करने हेतु
सॉस	20	
अन्य सॉस	25 (एसिटिक एसिड जैसे न्यूनतम अम्लता, 0.2 प्रतिशत)	

स्प्रे ड्रांइग, रोलर ड्रांइग और मैट ड्रांइग जैसे विभिन्न तरीकों का उपयोग करके जूस को पाउडर में परिवर्तित किया जा सकता है। हालांकि रस और गूदे का निष्कर्षण निकालने के बाद बचे हुए पोमेस को ट्रे में सूरज की गर्मी में सुखाकर टमाटर पोमेस पाउडर में परिवर्तित किया जा सकता है। किसान या उद्यमी जिनके पास प्रसंस्करण करने के लिए ज्यादा सुविधाएं नहीं हैं वे सूर्य एवं सौर तकनीक का उपयोग कर टमाटर का पाउडर बना सकते हैं और मुनाफा कमा सकते हैं।

उपयोग

- विकसित टमाटर पाउडर विभिन्न सूप की तैयारी लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।
- इसे कैचअप निर्माण में आधार सामग्री के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
- यह टमाटर चावल जैसे विभिन्न व्यंजननों को तैयार करने में इस्तेमाल किया जा सकता है।
- इसे टमाटर सूप में फिर से बनाया जा सकता है साथ ही उन्हें अपने विशिष्ट रंग, स्वाद और पानी बंधक गुणों के कारण सॉस मैरीनेड्स, बेबी फूड, स्नैक्स में इस्तेमाल किया जा सकता है।

उत्तराखंड में कुरमुला कीट प्रबंधन

निर्देश कुमार[1] और **मधुलिका पाण्डेय**[2]

कुरमुला कीट उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में बोई जाने वाली लगभग सभी फसलों के लिए एक प्रमुख समस्या बना हुआ है। खरीफ के समय मौसम में असिंचित दशा में विशेषत: उपराऊं भूमि में उगाई जाने वाली लगभग सभी फसलों में इसका प्रकोप होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में ज्यादातर कार्बनिक पदार्थों से युक्त दोमट मृदा पाई जाती है। रेतीली मृदा जिसमें कच्ची गोबर की खाद ज्यादा मिली होती है तथा पानी भी न रुकता हो, कुरमुला कीट के प्रकोप के लिए अत्यंत उपयुक्त होती है। कुरमुला कीट भूमि के अंदर पेड़-पौधों की जड़ों को नुकसान पहुंचाने वाला प्रमुख कीट है। यह कीट स्वभाव से बहुभक्षी होता है। ऐसे क्षेत्र, जहां पर पर्याप्त नमी हो तथा भूमि की कम जुताई की जाती हो, वहां कुरमुला कीट बहुतायत संख्या में पाए जाते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में कुरमुला कीट अलग-अलग नामों जैसे लोहार कीट, गुबरीया कीड़ा, सफेद गिडार, उकठा एवं गुबरैला इत्यादि नामों से जाना जाता है। कुरमुला कीट की वयस्क भृंगों (गुबरैलों), गिडार या शिशु (अपरिपक्व) अवस्था है। ये जुलाई से अक्टूबर तक सक्रिय अवस्था में मृदा के भीतर विभिन्न फसलों व पेड़-पौधों की जड़ों को काटकर क्षति पहुंचाते हैं। वयस्क भृंग (गुबरैले) विभिन्न वृक्षों व पौधों की पत्तियों को खाकर पत्तीविहीन कर देते हैं। भृंग हमेशा रात के समय जमीन से बाहर निकलते हैं। ये सुबह होने से पहले फिर से जमीन के अंदर वापिस चले जाते हैं। वयस्क भृंग हमेशा रात के समय बिजली के स्रोतों की ओर आकर्षित होते हैं। उनको बिजली के नजदीक जमीन पर निष्क्रिय अवस्था में देखा जा सकता है।

एनोमेला डिमिडिएटा

इसके वयस्क चमकीले हरे रंग के एवं गिडार हल्के पीले, सफेद या क्रीमी रंग के होते हैं। इस प्रजाति के नर व मादा मानसून की पहली वर्षा के पश्चात मई-जून से सितंबर-अक्टूबर तक भूमि की सतह से बाहर निकलकर अपनी रुचि के पोषक पेड़-पौधों पर बैठकर उनकी पत्तियां खाते हैं। वयस्क गुबरैले झुंड में पत्तियों को खाकर सुबह होते ही पास की भूमि में प्रवेश कर जाते हैं। मैथुन क्रिया पौधों पर होने के 6 दिनों बाद मादा 2-5 सें.मी. गहराई पर चौलाई के दाने के समान 20-50 तक सफेद अंडे देती हैं। प्रथम अवस्था की गिडार अत्यंत कोमल और काफी छोटी होती है एवं सड़े-गले कार्बनिक पदार्थ को खाती है। यह अवस्था लगभग 11-12 दिनों की होती है। प्रथम अवस्था की गिडार बड़ी होकर द्वितीय अवस्था की गिडार कहलाती है। इस अवस्था में कुरमुले की गिडार लगभग 38 दिनों के बाद तृतीय अवस्था की गिडार में परिवर्तित होकर मृदा के अंदर लगभग 240 दिनों तक रहती है। जुलाई से अक्टूबर तक द्वितीय व तृतीय अवस्था की गिडारें फसलों की जड़ों को हानि पहुंचाती हैं। अक्टूबर के द्वितीय पखवाड़े में तापमान घटने के साथ-साथ ये भूमि में गहराई की ओर बढ़ती हैं। ये मृदा में लगभग 100 सें.मी. तक नीचे चली जाती हैं और मृदा का खोल बनाती हैं। मार्च-अप्रैल में तापमान बढ़ने के साथ-साथ सुषुप्तावस्था को तोड़कर गिडार सक्रिय होती हैं और ऊपर की ओर बढ़ना प्रारंभ कर देती हैं। तापमान बढ़ने के साथ-साथ ये सक्रिय हो जाती हैं एवं कभी-कभी रबी की फसलों को भी हानि पहुंचाती हैं।

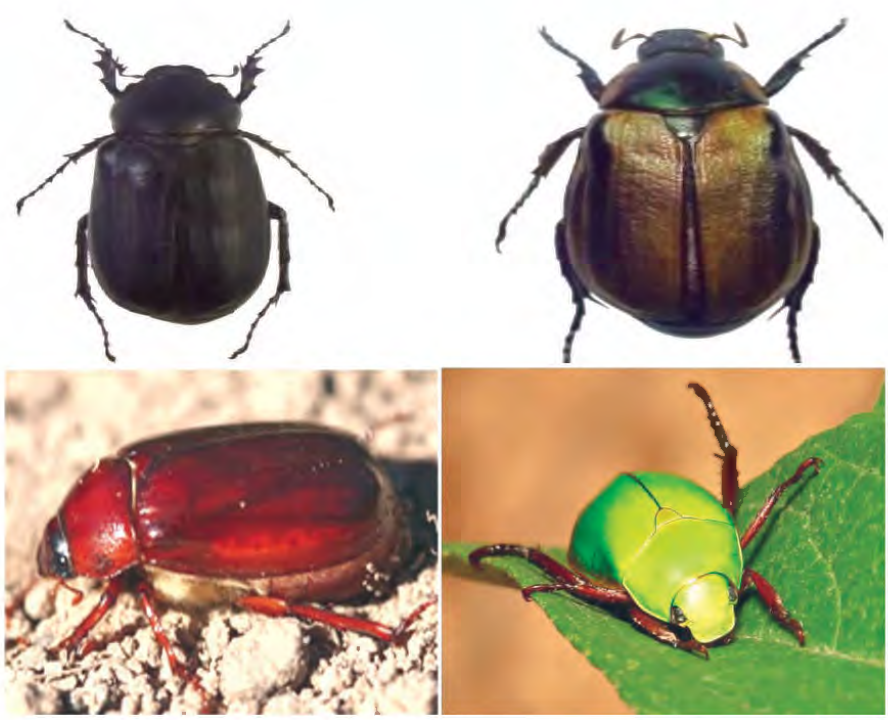

कुरमुला कीट की विभिन्न प्रजातियां

होलोट्रिकिया सेटीकोलिस

इस प्रजाति के गुबरैले मटमैले भूरे या चॉकलेटी रंग के होते हैं। नर एवं मादा गुबरैले सायंकाल में भूमि से बाहर निकलकर पेड़ों के तनों या अन्य स्थानों पर मैथुन क्रिया

[1]गोविन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर, ऊधम सिंह नगर-263145 (उत्तराखंड); [2]औषधीय एवं सगंधीय पादप संस्थान, गैरसैंण-246431 (उत्तराखंड), उत्तराखंड औद्यानिकी एवं वानिकी विश्वविद्यालय, भरसार

करते हैं फिर पत्तियों को खाते हैं। वयस्क मादा भूमि में 5 से 10 सें.मी. गहराई पर एकल रूप से 15 से 20 अंडे देती है। यह अवस्था 9 से 11 दिनों तक रहती है। अंडों से निकली प्रथम अवस्था की गिडार छोटी होती है, जो कि कार्बनिक पदार्थों को अपना भोजन बनाती है तथा फसलों को क्षति नहीं पहुंचाती है। इसके पश्चात द्वितीय अवस्था 34 दिनों एवं तृतीय अवस्था में 59 दिनों की गिडारें फसलों को हानि पहुंचाती हैं। ये सितंबर के मध्य से अक्टूबर के मध्य तक 15 से 20 दिनों तक किशोरावस्था में रहती हैं। इसके पश्चात ये वयस्क में परिवर्तित हो जाती हैं व ठंड के साथ गहराई में जाकर खोल बनाकर निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। ये अप्रैल-मई में तापमान बढ़ने पर खोल से बाहर निकलकर भूमि पर रहती हैं। ये मई अंत से जुलाई प्रारंभ में परिपक्व होने पर मानसून की प्रथम वर्षा के साथ निकलना प्रारंभ करती हैं। इसकी एक वर्ष में एक पीढ़ी पाई जाती है, जो कि अंडे से वयस्क तक 135 दिनों में पूर्ण होती है।

जीवन चक्र

कुरमुला कीट का जीवन चक्र

इनके जीवन चक्र पर उस स्थान के जैविक व अजैविक घटकों का प्रभाव पड़ता है। ज्यादातर प्रजातियों का जीवन चक्र एक वर्ष का होता है। परंतु कुछ प्रजातियों का जीवन चक्र 2 वर्ष अथवा उससे भी ज्यादा होता है। कम तापमान वाले क्षेत्रों में कुरमुला कीट का जीवन चक्र लंबा होता है जबकि अधिक तापमान वाले क्षेत्रों में इसका जीवन चक्र छोटा होता है।

होलोट्रिकियालांगिपेनिस

इस कीट का वयस्क भूरे-सफेद रंग का होता है। ये जून के प्रारंभ में सायंकाल लगभग 7 बजे निकलना प्रारंभ करते हैं। भूमि से निकलने के तुरंत बाद मैथुन क्रिया के पश्चात ये अपनी रुचि के पेड़-पौधे की पत्तियां खाते हैं। एक मादा 10-40 अंडे मिट्टी में 6-10 सें.मी. गहराई पर एकल रूप से देती है। यह अवस्था 10-15 दिनों तक होती है। प्रथम अवस्था के गिडार 16 दिनों तक अधिकतर कार्बनिक पदार्थों को अपना भोजन बनाते हैं एवं 36 से 45 दिनों बाद द्वितीय अवस्था में पहुंच जाते हैं। द्वितीय अवस्था के गिडार 38 से 49 दिनों में तृतीय अवस्था में बदल जाते हैं। तापमान में गिरावट के साथ तृतीय अवस्था 40 से 50 सें.मी. गहराई पर मिट्टी के अंदर सुषुप्तावस्था में रहते हैं। तापमान बढ़ने पर अप्रैल के प्रारंभ में ये भूमि के ऊपर की ओर बढ़ने लगते हैं। किशोरावस्था में 16 से 25 दिनों तक रहने के बाद वयस्क बन जाते हैं। इस कीट की वर्ष में केवल एक पीढ़ी पाई जाती है।

वयस्क गुबरैले मई-जून में प्रथम बरसात होने पर सायंकाल के समय मिट्टी से बाहर निकलते हैं। खेत के आसपास जंगली झाड़ियों, फल वृक्षों, पोषक पौधों की पत्तियों को खाते हैं। पत्तियों पर मैथुन करने के बाद सुबह फिर भूमि के अंदर चले जाते हैं। मादा भृंग, मैथुन के लगभग 4-6 दिनों में नमी वाली जगह पर 1-8 इंच गहरी मृदा में अंडे देना शुरू कर देती है। इन्हीं अंडों से लगभग 15-20 दिनों बाद छोटे-छोटे गिडार (सूंडियां) निकलती हैं। खेत में पहले से पड़े कच्चे गोबर या पौधों की जड़ों को ये खाते हैं, जिससे अगस्त-सितंबर तक पौधे पीले पड़कर सूखने लगते हैं। सूंडियों में 3 अवस्थाएं पाई जाती हैं। सूंडी वाली अवस्था लगभग 6-7 महीनों तक रहती है। सबसे ज्यादा नुकसान तृतीय अवस्था की सूंडियां सितंबर

अदरक में कुरमुला का प्रकोप

आलू में कुरमुला से हानि

मूंग में कुरमुला से नुकसान

मूंगफली में कुरमुला का हमला

मटर में कुरमुला का प्रकोप

मक्का में कुरमुला से बर्बादी

कुरमुला से प्रभावित फसलें व पेड़-पौधे

कुरमुला कीट की मुख्य प्रजातियां

उत्तराखंड के विभिन्न पर्वतीय क्षेत्रों में कुरमुला कीट की लगभग 35 प्रजातियां पाई गई हैं। इनमें आर्थिक दृष्टिकोण से छः प्रजातियां *होलोट्रिकिया लांगीपेनिस, होलोट्रिकिया सेटिकोलिस, एनोंमेला डमिडिएटा, एनोंमेलालैनिटोपेनिस, ब्राहमिना कोरेसी एवं मेलोलोन्था फर्सीकौडा* महत्वपूर्ण हैं। कुमायूं में *एनोंमेला डमिडिएटा* एवं गढ़वाल में *होलोट्रिकिया लांगीपेनिस* का प्रकोप ज्यादा है।

कुरमुला से प्रभावित फसलें

से नवंबर महीने तक करती हैं। ये पूर्णत: विकसित गिडार (सूंडियां) दिसंबर-जनवरी में ठंड से बचने के लिए मिट्टी में काफी नीचे (सुषुप्तावस्था) में चली जाती हैं, फिर पुन: मार्च-अप्रैल में तापमान बढ़ने पर मृदा की ऊपरी सतह में आ जाते हैं तथा कुछ दिनों में प्यूपा में परिवर्तित हो जाते हैं। प्यूपा से लगभग 2-3 सप्ताह में वयस्क भृंग (गुबरैले) निकलते हैं।

कुरमुला से प्रभावित फसलें व पेड़-पौधे

कुरमुला कीट खरीफ में उगाई जाने वाली लगभग सभी फसलों एवं सब्जियों आदि को नुकसान पहुंचाता है।

वयस्क भृंग (गुबरैले) द्वारा प्रभावित पेड़, पौधे, फल वृक्ष

फल वृक्ष: सेब, अखरोट, मीठा पांगर, अमरूद, अनार, आड़ू

चारा व जंगली वृक्ष: खरिक, चमलई, उत्तीस, पांगर, भींमल, बांज, तिमला, खिना आदि।

सजावटी पौधे: गुलाब, डहेलिया, ग्लोडिलाई आदि।

झाड़ियां: जंगली गुलाब, हिसालू, किल्मोड़ा आदि।

गिडारों (सूंडियों) द्वारा प्रभावित प्रमुख फसलें व सब्जियां

फसलें: धान, झंगोरा, मंडुआ, सोयाबीन, मूंगफली, मक्का, रामदाना, कॉफी आदि।

सब्जियां: आलू, मिर्च, टमाटर, भिंडी, बैंगन, अदरक, हल्दी, गोभीवर्गीय सब्जियां आदि।

क्षति एवं लक्षण

कुरमुला कीट के दोनों ही वयस्क भृंग एवं गिडार (परिपक्व) अवस्थाएं फसलों को क्षति पहुंचाते हैं। इस कीट के गिडार (परिपक्व) जुलाई से अक्टूबर तक मृदा के भीतर सक्रिय रहते हैं। ये पौधों की जड़ों को धीरे-धीरे कुतरकर पूर्णत: नष्ट कर देते हैं, जिससे पौधे पीले पड़ने लगते हैं। कुरमुला द्वारा ग्रसित पीले पड़े पौधों को अगस्त में आसानी से देखा जा सकता है, जो जल्द ही मध्य सितंबर तक पूर्णत: सूख जाते हैं। ऐसे पौधों की जड़ें बिल्कुल नष्ट हो जाती हैं। आलू तथा अदरक जैसी फसलों में इस कीट के गिडार केवल कंदों को क्षति पहुंचाते हैं। इसके कारण पौधों के ऊपरी भाग पर प्रकोप का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। गिडार कंदों में बड़े-बड़े छेद कर देते हैं, जिस वजह से फसल विपणन के लिए उपयुक्त नहीं रहती। कुरमुला कीट आकस्मिक जड़ों वाली फसलों की तुलना में नल जड़ वाली फसलों को अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट के वयस्क गुबरैले रात्रिचर होते हैं। जून-जुलाई में अधिक संख्या में मृदा से निकलकर, अपने काटने तथा चबाने वाले मुखांगों की सहायता से पौधों के पत्तों तथा फलों को क्षति पहुंचाते हैं। ये पौधों की पत्तियों को किनारों से खाकर पत्तीविहीन कर देते हैं। पेड़ों पर पत्तों के मध्य शिरा ही रह जाती है। फलों को क्षति पहुंचाने के कारण फलों का आकार टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है या वे सड़कर गिर जाते हैं, जिस कारण फल विपणन के लिए उपयुक्त नहीं रहते।

क्षति एवं लक्षण

कुरमुला कीट के दोनों ही वयस्क भृंग एवं गिडार (परिपक्व) अवस्थाएं फसलों को क्षति पहुंचाते हैं। इस कीट के गिडार (परिपक्व) जुलाई से अक्टूबर तक मृदा के भीतर सक्रिय रहते हैं। पौधों की जड़ों को धीरे-धीरे कुतरकर पूर्णत: नष्ट कर देते हैं, जिससे पौधे पीले पड़ने लगते हैं। कुरमुला द्वारा ग्रसित पीले पड़े पौधों को अगस्त में आसानी से देखा जा सकता है, जो जल्द ही मध्य सितंबर तक पूर्णत: सूख जाते हैं। ऐसे पौधों की जड़ें बिल्कुल नष्ट हो जाती हैं। आलू तथा अदरक जैसी फसलों में इस कीट के गिडार केवल कंदों को क्षति पहुंचाते हैं। इसके कारण पौधों के ऊपरी भाग पर प्रकोप का कोई लक्षण दिखाई नहीं देता। गिडार कंदों में बड़े-बड़े छेद कर देते हैं। इसकी वजह से फसल विपणन के लिए उपयुक्त नहीं रहती। कुरमुला कीट आकस्मिक जड़ों वाली फसलों की तुलना में नल जड़ वाली फसलों को अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। कुरमुला कीट के वयस्क गुबरैले रात्रिचर होते हैं। जून-जुलाई में अधिक संख्या में मृदा से निकलकर, अपने काटने तथा चबाने वाले मुखांगों की सहायता से पौधों के पत्तों तथा फलों को क्षति पहुंचाते हैं। ये पौधों की पत्तियों को किनारों से खाकर पत्तीविहीन कर देते हैं। पेड़ों पर पत्तों के मध्य शिरा ही रह जाती है। फलों को क्षति पहुंचाने के कारण फलों का आकार टेढ़ा-मेढ़ा हो जाता है या वे सड़कर गिर जाते हैं। इस कारण फल विपणन के लिए उपयुक्त नहीं रहते।

कुरमुला कीट का समेकित नियंत्रण

पर्वतीय क्षेत्रों में विभिन्न पारिस्थितिक कारकों जैसे ऊंचाई, मृदा के प्रकार, जलवायु आदि एवं कुरमुला कीट की विभिन्न प्रजातियों की उपस्थिति के कारण इस कीट को नियंत्रित करना अत्यंत कठिन हो जाता है। कुरमुला के नियंत्रण के लिए केवल रासायनिक कीटनाशी पर निर्भर रहना उचित नहीं है। इसके नियंत्रण के लिये निम्नलिखित समेकित नियंत्रण रणनीति अपनानी चाहिए:

सस्य क्रियाओं द्वारा नियंत्रण

- पर्वतीय क्षेत्रों में खेतों में गोबर की कच्ची खाद का प्रयोग करने की जगह गोबर की सड़ी खाद का प्रयोग करें, इससे कुरमुला कीट का प्रकोप कम होता है।
- मार्च और अप्रैल में खाली/परती खेतों की गहरी जुताई करने से इस कीट की विभिन्न अवस्थाएं सूर्य के प्रकाश से प्रभावित होती हैं अथवा परजीवी पक्षियों के लिए उपलब्ध हो जाती हैं। इस प्रकार दो बार गहरी जुताई करने से कीटों की संख्या 70-75 प्रतिशत तक कम हो सकती है।
- जुलाई-अगस्त में खेतों की निराई-गुड़ाई करते समय सूंडियों को हाथ से पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- कुरमुला कीट के वयस्क भृंग (गुबरेला) पेड़-पौधों की पत्तियों को

सायंकाल के समय समूह में खाते हैं। इनको ऊंचे पेड़ों की टहनियों पर किसी डंडे से हिलाकर रात्रि में 9 से 11 बजे के मध्य सामूहिक तौर पर एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए। अन्यथा मादा द्वारा अंडे देने के पश्चात यह प्रयास असफल हो सकता है।

- कुरमुला के द्वारा अति प्रभावित क्षेत्रों में कुरमुला के लिए काफी हद तक सहिष्णु फसलों जैसे रामदाना, मक्का आदि की खेती करनी चाहिए।
- अगस्त-सितंबर में फसल काटने के पश्चात खेत की जुताई करनी चाहिए। इससे तृतीय अवस्था वाली सूंडियां जुताई करते समय मृदा के ऊपर आ जाती हैं तथा चिड़िया द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं।

यांत्रिक नियंत्रण

- इस कीट के भृंग रात्रिचर होते हैं तथा रोशनी की तरफ काफी संख्या में आकर्षित होते हैं। इसलिए प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रैप) मई के अंत में पहली बरसात के तुरंत बाद लगा लेना चाहिए तथा वयस्क भृंगों को एक टब में, जिसमें मिट्टी का तेल मिला हुआ पानी भरा हो, एकत्र कर लेना चाहिए।

रासायनिक नियंत्रण

- पोषक पौधों पर जब कुरमुला कीट के वयस्कों का अधिक प्रकोप हो तो कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. कीटनाशक का 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
- खड़ी फसल में गिडारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए क्लोरीपाइरीफॉस 10 जी. का 10 कि.ग्रा./हैक्टर (200 ग्राम/नाली) अथवा क्लोरीपाइरीफॉस 20 ई.सी. का 4 लीटर/हैक्टर (80 मि.ली./नाली) की दर से 40 कि.ग्रा./हैक्टर (1 कि.ग्रा./नाली) भुरभुरी मिट्टी/बालू अथवा राख मिलाकर जून के आखिरी सप्ताह/जुलाई के प्रथम पखवाड़े में खड़ी फसल में बिखेर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त फोरेट 10 जी. का 20 कि.ग्रा./हैक्टर (400 ग्राम/नाली) की दर से भी प्रयोग कर हो सकते हैं।
- गुबरैलों द्वारा अधिक पसंद किए जाने वाले पोषक पौधों जैसे हिसालू, अखरोट, मीठा पांगर आदि की शाखाओं को काटकर उन्हें उपरोक्त कीटनाशक के घोल से उपचारित करके, मई-जून में इनके प्रथम आक्रमण के समय से ही खेत के चारों तरफ शाम को लगायें। इन उपचारित शाखाओं की पत्तियों को गुबरैले खाकर मर जाते हैं।
- कीटनाशक का प्रयोग गुड़ाई के समय करें, ताकि कीटनाशक अच्छी तरह से जमीन में मिल जाएं।
- खड़ी फसल में कीटनाशक का मई के अंत या जून के प्रथम सप्ताह में होने वाली बरसात के 20-22 दिनों के बाद प्रयोग करना चाहिए। इससे दवा का रिसाव जड़ों तक हो जाता है, जहां प्रथम अवस्था वाली सूंडियां खेतों में उपस्थित होती हैं।
- बुआई के समय इमिडाक्लोप्रिड 5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से बीजोपचार करना चाहिए। इससे कुरमुले के साथ-साथ अन्य कीटों का प्रकोप भी कम होता है।

जैविक नियंत्रण

- कुरमुला (गिडार) के जैविक नियंत्रण के लिए विवेकानंद पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा एक अत्यंत प्रभावी जैव कीटनाशी जीवाणु, बैसिलस सिरियस स्ट्रेन डब्ल्यू.जी. पी.एस.बी.-2 पाउडर के रूप में विकसित किया गया है। मई में इस पाउडर को 200 ग्राम/नाली (10 ग्राम/हैक्टर) की दर से 10 कि.ग्रा. गोबर अथवा कम्पोस्ट की खाद में मिलाकर दो या तीन सप्ताह के लिए छायादार स्थान पर रख दें। तत्पश्चात अंतिम जुताई (जून के प्रथम सप्ताह) में खेत में समान रूप से बिखेर दें। इस पाउडर में मौजूद जीवाणु खेतों में उपस्थित स्वस्थ कुरमुलों की प्रथम अवस्था को रोगग्रसित कर नष्ट कर देते हैं। कुरमुला लंबी अवधि के लिए नियंत्रित हो जाता है। बुआई से पूर्व इस पाउडर का 3.0 ग्राम/कि.ग्रा. की बीज दर से शोधन कर देने से कुरमुले का आक्रमण कम होता है।

कुरमुला कीट के पर्वतीय क्षेत्रों में प्रकोप के प्रमुख कारण

- कीटनाशकों/फफूंदनाशकों/खरपतवार नियंत्रक रसायनों के अधिक से अधिक प्रयोग करने से मृदा में पाए जाने वाले मित्रकीट, लाभकारी फफूंदों आदि का प्रभाव मृदा के अंदर खत्म हो गया है। इन्हीं कारणों से पर्वतीय क्षेत्रों में फसलों पर कुरमुला कीट का प्रकोप बढ़ता जा रहा है।
- वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण यह कीट जंगलों से खेतों की तरफ आ गया तथा फसलों को बर्बाद करना शुरू कर दिया।
- प्राचीन समय में खेतों की जुताई सुबह और शाम बैलों के द्वारा की जाती थी। इससे इसी समय परभक्षी पक्षी काफी संख्या में खेतों में कुरमुला कीट को उठाकर नष्ट कर देते थे। वर्तमान समय में ट्रैक्टर द्वारा खेतों की जुताई किसी भी समय की जा रही है, जिसके कारण परभक्षी पक्षी खेतों के नजदीक नहीं आते हैं। इसीलिए कुरमुला कीट की संख्या हर साल बढ़ती जा रही है।

उत्तराखंड में पाई जाने वाली कुरमुला कीट की मुख्य प्रजातियां

अगेती हरी मटर से अधिक आय

लाल सिंह, मुकेश सिंह, पी.के.एस. गुर्जर, अखिलेश श्रीवास्तव और **भगवान कुमरावत**
राजमाता विजया राजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र राजगढ़ (ब्यावर) मध्य प्रदेश

मटर की खेती उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में सर्द मौसम में तथा पहाड़ी क्षेत्रों में गर्मी के मौसम में की जाती है। इसकी खेती मुख्य रूप से हरी फलियों के लिए की जाती है और यह सब्जी बनाने के काम आती है। सूखे दानों का प्रयोग दाल के रूप में किया जाता है। इस समय देश में मटर की खेती 3,51,800 हैक्टर क्षेत्रफल में की जा रही है। इससे लगभग 2,81,440 टन का उत्पादन प्राप्त हो रहा है। औसतन हरी मटर की उत्पादकता 80 क्विंटल/हैक्टर है।

दाने वाली मटर का उपयोग जानवरों के आहार के रूप में किया जाता है। मटर के हरे पौधों का प्रयोग जानवरों के हरे चारे व हरी खाद के लिए किया जाता है। पकी हुई मटर से दाने व भूसा दोनों ही प्राप्त होते हैं। दानों का प्रयोग दाल, सूप व रोटी बनाने के लिए किया जाता है अथवा भूसे का प्रयोग जानवरों को खिलाने में किया जाता है। पतले छिलके वाली मटर की पूर्ण फलियों और छिले हुए हरी मटर के दानों को सुखाकर या डिब्बाबंद करके संरक्षित किया जाता है। इसका प्रयोग बाद में सब्जी में किया जाता है।

भारत में हरी मटर की खेती सबसे अधिक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, झारखंड, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश आदि राज्यों में की जाती है।

पोषक मूल्य

मटर में पोषक तत्व की भरपूर मात्रा पाई जाती है। इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, विटामिन एवं खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

जलवायु

मटर ठंडे मौसम की फसल है। इस फसल के लिए औसत तापमान 13-19^0 सेल्सियस सर्वोत्तम होता है। बीज का अंकुरण 22^0 सेल्सियस पर बहुत अच्छा होता है। पौधों को वृद्धिकाल में नम व ठंडी जलवायु की आवश्यकता होती है। फसल के पकने के समय अपेक्षाकृत कुछ उच्च तापमान एवं शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है।

भूमि की तैयारी

मटर को विभिन्न प्रकार की भूमि में बोया जा सकता है। परंतु उचित जल निकास वाली दोमट भूमि इसके लिए उपयुक्त रहती है। ऐसी भूमि जिसका पी-एच मान 6 से 7.5 के मध्य होता है, वह भूमि मटर की खेती के लिए

मटर का कृषकों के खेतों में प्रदर्शन

सारणी 1. प्रति 100 ग्राम मटर से प्राप्त होने वाले पोषक तत्व

क्र.सं.	पोषक तत्वों का नाम	मात्रा/इकाई
1.	नमी	72.0 ग्राम
2.	वसा	0.1 ग्राम
3.	रेशा	4.0 ग्राम
4.	कैलोरीन	93.0
5.	प्रोटीन	7.2
6.	खनिज पदार्थ	0.8 ग्राम
7.	कार्बोहाइड्रेट्स	15.8 ग्राम
8.	कैल्शियम	20.0 मि.ग्रा.
9.	मैग्नीशियम	34.0 मि.ग्रा.
10.	फॉस्फोरस	139.0 मि.ग्रा.
11.	पोटेशियम	79.0 मि.ग्रा.
12.	सोडियम	7.8 मि.ग्रा.
13.	कॉपर	23.0 मि.ग्रा.
14.	लोहा	1.5 मि.ग्रा.
15.	सल्फर	95.0 मि.ग्रा.
16.	थायमीन	0.25 मि.ग्रा.
17.	राइबोफ्लेविन	0.01 मि.ग्रा.
18.	निकोटिनिक अम्ल	0.8 मि.ग्रा.
19.	विटामिन सी	9.0 मि.ग्रा.
20.	ऑब्सेलिक अम्ल	14.0 मि.ग्रा.
21.	विटामिन	129.0 आई.यू.

उत्तम मानी जाती है। खेत की तैयारी के लिए एक जुताई मृदा पलटने वाले हल से उसके बाद दो से तीन जुताई कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद समतलीकरण के लिए पाटा चलाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

हरी मटर की खेती सिंचित क्षेत्रों में की जाती है। मटर के लिए उचित मात्रा में खाद और उर्वरक देकर अधिक पैदावार ली जा सकती है। उर्वरकों की सही मात्रा मृदा परीक्षण अनुसार देनी चाहिए। यदि मृदा परीक्षण न हो सके तो ऐसी स्थिति में प्रति हैक्टर निम्नानुसार मात्रा में खाद एवं उर्वरक देनी चाहिए:

गोबर की खाद	– 2000–2500 कि.ग्रा.
नाइट्रोजन	– 25–30 कि.ग्रा.
फॉस्फोरस	– 50–60 कि.ग्रा.
पोटाश	– 60 कि.ग्रा.

गोबर की खाद को पहली जुताई से पूर्व खेत में समान रूप से फैला देना चाहिए। उर्वरकों को अच्छी तरह से मिलाकर बीज की सतह से 4–5 सें.मी. गहराई में डालना चाहिए। ऐसा करने से पौधे इसको पूर्ण रूप से उपयोग कर लेते हैं। इससे अधिक उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई

मटर के अच्छे अंकुरण के लिए पलेवा करके बुआई करनी चाहिए। पहली सिंचाई फूल निकलते समय करें एवं दूसरी सिंचाई कलियों के निर्माण के समय करें। यदि भूमि हल्की संरचना वाली हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहना चाहिए।

फसल चक्र

खरीफ की फसलें–ज्वार, मक्का, बाजरा व धान आदि के बाद मटर की फसल साधारणत: ली जाती है। फसल चक्र का चयन निम्नानुसार करें, जिससे कि खरपतवार, कीट व रोग नियंत्रण में सुविधा रहे तथा मृदा की उर्वराशक्ति को संरक्षित रखा जा सके।

प्रमुख फसल चक्र इस प्रकार है, अरबी–मटर–लौकी, कपास– मटर–चौलाई, ज्वार–मटर–ग्वार, भिंडी– मटर–अरबी, लोबिया–मटर–मिर्च, मक्का– मटर–भिंडी, बाजरा–मटर–भिंडी ओर धान–मटर–करेला।

बीजारोपण

बीजदर एवं अंतरण

अगेती प्रजातियों के लिए 100–125 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर तथा पछेती प्रजातियों के लिए 75–80 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर का प्रयोग करते हैं। उचित समय पर बुआई की गई फसल के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 4–5 सें.मी. रखते हैं।

बीजोपचार

बीजजनित रोगों से बचाव के लिए फफूंदनाशक दवा थायरम + कार्बेन्डाजिम (2+1) 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। रसचूसक कीटों से बचाव के लिए थायोमिथोक्जाम दवा 5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें। उसके बाद वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण के लिए राइजोबियम कल्चर और भूमि में अघुलनशील फॉस्फोरस को घुलनशील अवस्था में परिवर्तित करने के लिए पी.एस.वी. कल्चर 10 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार कर बुआई करें।

बुआई का समय

दाल वाली मटर की बुआई 15–30 अक्टूबर तक की जाती है। हरी फलियों (सब्जी) के लिए बुआई 20 अक्टूबर 15 नवंबर तक करना लाभदायक रहता है।

बुआई का तरीका

बुआई कतार में नारी हल या सीड ड्रिल या सीड कम फर्टिड्रिल से करनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधन

फसल में खरपतवारों की समस्या होने पर 'व्हील हो' या 'हैण्ड हो' द्वारा निराई करें। इससे फसल के जल क्षेत्र में वायु संचार बढ़ जाता है और खरपतवार नियंत्रित होने से पौधे की शाखाओं और उत्पादन में वृद्धि होने लगती है। इसके अतिरिक्त खरपतवार नाशक दवाओं का उपयोग करना चाहिए।

रोग व उनके नियंत्रण

उकठा तथा जड़ सड़न

यह फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम तथा राइजोक्टोनियां सोलेनी फफूंद के द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप अगेती फसल बुआई पर दिखाई देता है। इसके उपचार के लिए–2.5 ग्राम

सारणी 2. उन्नत किस्में

क्र.सं.	उन्नत किस्में	पकने की अवधि (दिनों में)	उपज क्विं./हैक्टर) हरी फलियां	विशेषताएं	विकसित किस्म
अ.	**शीघ्र पकने वाली किस्में**				
1.	असौंजी	60-65	70-80	चिकने दाने, 6-7 दाने प्रति फली, प्रति बेल 5-7 फलियां	चायनीज किस्म
2.	अर्किल	60-65	100-125	8-10 सें.मी. लंबी तलवारनुमा, 5-6 दाने चूर्णी फफूंदी रोग के प्रति रोधक, दाने मीठे, पौधे में दो टहनियां, प्रत्येक टहनी में एक साथ दो फलियां	यूरोपियन किस्म
3.	मिटियोर	60-65	60-70	दाने मुर्रीदार, मीठे स्वादिष्ट एवं सफेद फूल	यूरोपियन किस्म
ब.	**मध्यम समय में पकने वाली किस्में**				
4.	बौनविले	85	100	दाना खुरदरा, फलियां लंबी, गहरी हरी तथा भरी हुई, दाने मोटे व मीठे	अमेरिका की उन्नत किस्म
5.	जवाहर मटर-1	90	115-120	फली में दानों की संख्या औसतन 8.5, प्रोटीन 24.63 प्रतिशत	ज.ने.कृ.वि.वि. के क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, ग्वालियर द्वारा विकसित
6.	जवाहर मटर-2	95	135-150	फली की लंबाई लगभग 9 सें.मी., प्रत्येक फली में 9 दाने, फली का छिलका मोटा, दूरस्थ बाजारों के लिए उपयुक्त ,24.67 प्रतिशत प्रोटीन	ज.ने.कृ.वि.वि. के क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, ग्वालियर द्वारा विकसित
7.	जवाहर मटर-3 एवं जवाहर मटर-4	75-80	75 एवं 85-90	फली की लंबाई 6-7 सें.मी. और प्रत्येक फली में 7 दाने	ज.ने.कृ.वि.वि. के क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र, ग्वालियर द्वारा विकसित
8.	आजाद मटर-1	70-75	100	पौधों की मध्यम ऊंचाई, फलियां लंबी और अंतिम सिरे पर नुकीली	पंत नगर कृषि विश्वविद्यालय, कानपुर द्वारा, विकसित
9.	पी.एस.एम.-3	75-80	95-100	फलियां लंबी और अंतिम सिरे पर नुकीली	चन्द्रशेखर आजाद कृषि वि.वि. द्वारा विकसित
स.	**देर से पकने वाली प्रजातियां**				
10.	स्वर्ण रेखा	120	80-100	फूल सफेद, दाना बड़ा, सब्जी और दानों के लिए उपयुक्त	स्थानीय किस्म
11.	एन.पी.-29	100	90-100	दाना खुरदरा, पौधे ऊंचे एवं अधिक शाखाएं एवं अधिक उपज	स्थानीय किस्म

सारणी 3. मटर की फसल में विभिन्न रसायनों से उपचार

क्र.सं.	दवा का नाम	मात्रा/हैक्टर	उपयोग का समय	उपयोग करने की विधि
1	पेंडीमेथिलीन	3 लीटर/ हैक्टर	बुआई के तुरंत बाद एवं अंकुरण के पहले	500 से 600 लीटर पानी/हैक्टर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।
2	मेट्रीब्यूजेन	250 ग्राम/ हैक्टर	बुआई के 15 से 20 दिनों बाद छिड़काव करें	500 से 600 लीटर पानी/हैक्टर की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें।

कार्बेण्डाजिम +1 ग्राम मैन्कोजेब प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बुआई करें।

चूर्णी फफूंद रोग

यह रोग एरीसाइफी पॉलीगोनी नामक फफूंद से अधिकतर नम मौसम में लगता है। पत्तियों पर सफेद चूर्ण फफूंद जैसी रचना दिखाई देती है। पछेती किस्मों में इसका आक्रमण गंभीर रूप से होता है। मटर में फूल आते समय मौसम काफी नम रहने से इसका प्रकोप अधिक होता है। इसकी रोकथाम के लिए 3 कि.ग्रा. घुलनशील गंधक या सल्फेक्स को 600 लीटर पानी में घोलकर एक हैक्टर में छिड़कें। यदि आवश्यकता हो तो 15 दिनों बाद दूसरा छिड़काव करें।

गेरूआ

यह रोग यूरोमाइसीन फेबी नामक फफूंद से लगता है। इसको रोकने के लिए रोगरोधी किस्मों को ही खेत में उगाना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए डायथेन एम-45 की 2.25 कि.ग्रा. मात्रा को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर में छिड़काव करें।

कटाई व मड़ाई

सब्जी के लिए बोई गई फसल जनवरी के मध्य से फरवरी के अंत तक फलियां देती है। फलियों को 10-12 दिनों के अंतर पर 3-4 बार में तोड़ते हैं। इसकी प्रजाति अर्ली दिसंबर, दिसंबर के अंत तक फलियां देने लगती हैं। दाने के लिए बोई गई फसल सामान्य अवस्थाओं में 115-125 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। फसल मार्च व अप्रैल के प्रारंभ तक बुआई के समयानुसार काट ली जाती है। एक सप्ताह तक पौधों को सुखाकर मड़ाई कर लेनी चाहिए। बीज को भंडार में रखते समय 3-4 दिनों तक सुखाते हैं, जिससे दानों में नमी 8-10 प्रतिशत रह जाये।

उपज

हरी फलियों की पैदावार 80-120 क्विंटल/प्रति हैक्टर तक प्राप्त हो जाती है।

कीट एवं उनका नियंत्रण

तना छेदक

मटर की अगेती बुआई करने पर तनाछेदक कीट का अत्यधिक प्रकोप होता है। फसल बढ़वार की प्रारंभिक अवस्था में ही इसकी मक्खियां पत्तियों की निचली सतहों पर अंडे देती हैं। इनके शिशु तने में सुरंग बनाकर अपना भोजन प्राप्त करते हैं, जिससे टहनी का अगला भाग मर जाता है। इसके साथ ही पौधों की वृद्धि रुक जाती है और पौधा सूख जाता है। इसके नियंत्रण के लिए फोरेट 10 जी. दानेदार दवा 20 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुआई से पहले मृदा में मिला देनी चाहिए।

फलीछेदक

इस कीट का प्रकोप पछेती फसल पर अधिक होता है। इसकी सूंडियां गहरे हरे रंग की होती हैं। इस कीट की सूंडियां बाद में भूरे रंग की हो जाती हैं। यह फूल आने से लेकर कटाई तक फसल को हानि पहुंचाती है। यह फूल आने से पूर्व व फली में छेद करके अंदर ही अंदर दाने खाने लगती है। फलीछेदक कीट की रोकथाम के लिए फूल आने से पूर्व व फली बनने के बाद प्रोपेनोफॉस 50 ई.सी. का 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। सब्जी के लिए फलियों की तुड़ाई हमेशा छिड़काव के 10 दिनों बाद करनी चाहिए।

लीफ माइनर

यह कीट मटर की पत्ती एवं तने का रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है। मटर के अलावा यह कीट सरसों, मूली व गोभीवर्गीय फसलों को भी हानि पहुंचाता है। इसके नियंत्रण के लिए मृदा उपचार फोरेट 10 जी.ए 10 कि.ग्रा./हैक्टर खेत की तैयारी के समय बुरकाव करें। खड़ी फसल में प्रकोप दिखने पर क्विनालफॉस दवा का 2 मि.ली./लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

सारणी 4. हरी मटर की खेती में अनुमानित आय-व्यय का लेखा जोखा

क्र.सं.	कृषि कार्य	इकाई/हैक्टर	दर/इकाई (रुपये)	व्यय/ हैक्टर (रुपये)
1.	खेत की तैयारी	6 घंटे	300	1800
2.	बीज दर	75 कि.ग्रा.	80	6000
3.	खाद/उर्वरक			
	कल्चर	5 पैकेट	15	75
	नाइट्रोजन	30	12	360
	फॉस्फोरस	75	13	975
	पोटाश	60	15	900
	सड़ी हुई गोबर की खाद	5 टन/हैक्टर	800	4000
4.	फॉलीडाल डस्ट	25 कि.ग्रा.	12 कि.ग्रा.	300
5.	बीज बुआई	-	-	2000
6.	सिंचाई	4 सिंचाई	450/सिंचाई	1800
7.	निराई एवं गुड़ाई	20 श्रमिक	150	3000
8.	पौध संरक्षण (श्रमिक व्यय + दवाई)	6 श्रमिक	900+1100	2000
9.	हरी फलियों की तुड़ाई	30 श्रमिक	150/श्रमिक	4500
10.	अन्य खर्च	-	-	2000
	कुल व्यय	29,710		

अनुमानित उपज 90 क्विंटल/हैक्टर हरी फलियां
दर-1200 रुपये/क्विंटल हरी फलियां
90×1200=1,08,000
शुद्ध आय = कुल आय-कुल व्यय
78,290 = 1,08,000-29,710
अत: शुद्ध लाभ 78,290 रुपये प्रति हैक्टर प्राप्त होगी।

फलियां तोड़ने के पश्चात 150 क्विंटल/ हैक्टर तक हरा चारा प्राप्त हो जाता है। दाने की औसत उपज 15-22 क्विंटल/हैक्टर तक प्राप्त हो जाती है। भूसे की उपज लगभग 50 क्विंटल/हैक्टर तक मिल जाती है। ■

सफलता गाथा

श्री आशुतोष पांडेय द्वारा इस प्रकार से विभिन्न सब्जियों को बोया गया ताकि वर्षभर सब्जी उत्पादन को सुनिश्चित किया जा सके। इन्होंने ऑफ-सीजन बाजार का लाभ उठाने के लिए आलू, सेम, शिमला मिर्च, लोबिया और धनिया का उत्पादन किया। इन्होंने 0.25 हैक्टर क्षेत्रफल में स्ट्रॉबेरी की खेती करना प्रारंभ किया और पिछली फसल के मुकाबले में अच्छा बाजार मूल्य और कहीं अधिक लाभ कमाया। वर्ष 2017 में इन्होंने अपनी 0.4 हैक्टर भूमि पर स्ट्रॉबेरी की खेती करनी शुरू की थी। कुछ अन्य पड़ोसी किसानों ने भी इस सफलता को देख इसी प्रकार करना प्रारंभ किया। श्री पांडेय ने 5 टन/एकड़ स्ट्रॉबेरी फल की तुड़ाई की और बाजार और मांग के आधार पर फलों को प्रति कि.ग्रा. 100 से 200 रुपये की दर पर बेचा। इन्होंने चौड़ी क्यारियों में आलू और सेम को बोया और प्रत्येक क्यारी में आलू व सेम की दो-दो कतारों को रोपा। इन्होंने 140 क्विंटल/एकड़ की आलू उपज और 50-55 क्विंटल/एकड़ की सेम उपज हासिल की। इसके साथ ही इन्होंने धनिया का उत्पादन भी किया।

कृषि विज्ञान केन्द्र, बक्सर द्वारा स्ट्रॉबेरी की अच्छी गुणवत्ता वाली रोपण सामग्री और इनके भंडारण एवं विपणन की सुविधा को उपलब्ध कराया गया था। होटलों और स्थानीय बाजार के लिए अधिक मांग होने के कारण उच्च मूल्य वाली फसलों यथा आलू, सेम तथा सब्जी लोबिया उत्पादन से कहीं अधिक लाभ मिला। स्ट्रॉबेरी की खेती अधिक लाभकारी है और इससे कहीं अधिक रोजगार सृजन का अवसर मिलता है। इस प्रकार की स्मार्ट फार्मिंग की ओर बड़ी संख्या में ग्रामीण युवा आकर्षित हो रहे हैं। ■

सहजन है प्राकृतिक औषधि का भंडार

ज्योतिर्मयी लेंका और **रेखा चौरसिया**
भाकृअनुप-केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, रहमानखेड़ा, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

सहजन या ड्रमस्टिक (वानस्पतिक नाम *मोरिंगा ओलिफेरा*) के बारे में हम सभी जानते हैं। इसे सीजना, सुरजना, शोभाजन, मरूगई, मरूनागाई, इंडियम हार्सरेडिश आदि नामों से भी जाना जाता है। इसमें पाए जाने वाले पोषक तत्वों एवं औषधीय गुणों के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। सहजन भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान के उप-हिमालयी क्षेत्रों की मूल वनस्पति है। पौष्टिकता और औषधीय गुणों के कारण अफ्रीका के उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में भी इसकी खेती की जाती है। सहजन पूरे भारत में सुगमता से पाया जाने वाला पेड़ है। सहजन के पत्ते, फूल, फलियां, बीज, व छाल आदि सभी का किसी न किसी रूप में प्रयोग होता है। इसके पत्ते एवं फलियां शरीर को ऊर्जा देने के साथ-साथ शरीर में उपस्थित गैस एवं विषैले तत्वों को निकालने (डिटॉक्स) का काम करते हैं।

भारत में सहजन का उपयोग दक्षिण भारत में अधिकतर से सांभर एवं सब्जी के रूप में किया जाता है। दक्षिण भारत में साल भर फली देने वाले सहजन के पेड़ होते हैं, जबकि उत्तर भारत में ये साल में एक बार ही फली देते हैं। सहजन में पोषक तत्वों जैसे-प्रोटीन, आयरन, बीटा कैरोटीन, अमीनो अम्ल, कैल्शियम, पोटेशियम, मैग्नीशियम, विटामिन 'ए', 'सी', और 'बी', कॉम्प्लैक्स की अधिकता होने के कारण इसे कुपोषण को रोकने एवं इसके इलाज में इस्तेमाल किया जाता है। सहजन के पेड़ को कटिंग या बीज द्वारा बड़ी आसानी से घर के आसपास पार्क या बड़े गमलों में लगाया जा सकता है। सहजन पोषक तत्वों एवं स्वास्थ्यवर्धक गुणों के साथ-साथ पाचन तंत्र को भी मजबूती प्रदान करता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

सहजन अत्यंत गुणकारी और पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण सुपर फूड

सहजन के पेड़ की जड़

सारणी 1. सहजन के विभिन्न भागों के औषधीय गुण

क्र.सं.	भाग	औषधीय गुण
1.	बीज	पीड़ानाशक, एलर्जीनाशक, जीवाणुरोधी, मूत्रवर्धक औषधि, विषाणुरोधी
2.	बीज गिरी	दमारोधी, जलन या प्रदाहरोधी
3.	फली एवं बीज	रक्तचाप
4.	पत्ती	अल्सररोधी, अतिगलग्रन्थिता, फंगसरोधी, मधुमेह रोधी, हाइपोलिपिडेमिक आदि
5.	जड़	कैंसररोधी, प्रदाहकरोधी, पीड़ानाशक
6.	फूल	प्रतिवातौषधि, कीटाणुरोधी
7.	छाल	पीड़ानाशक, जर्मनाशक
8.	फोलियस	दूध बढ़ाने वाला

सारणी 2. सहजन की पत्ती (ताजी, सूखी एवं पाउडर) बीज एवं फलियों में पोषक तत्वों की मात्रा

क्र.सं.	पोषक तत्व	ताजी पत्ती	सूखी पत्ती	पत्ती का पाउडर	बीज	फली
1.	ऊर्जा (कैलोरी)	92.0	329.0	205.0	–	26.0
2.	प्रोटीन (ग्राम)	6.7	29.4	27.1	35.97	2.5
3.	वसा (ग्राम)	1.7	5.2	2.3	38.67	0.1
4.	कार्बोहाइड्रेट (ग्राम)	12.5	41.2	38.2	8.67	3.7
5.	रेशा (ग्राम)	0.9	12.5	19.2	2.87	4.8
6.	विटामिन बी-। (मि.ग्रा.)	0.06	2.02	2.64	0.05	0.05
7.	विटामिन बी-2 (मि.ग्रा.)	0.05	21.3	20.5	0.06	0.07
8.	विटामिन बी-2 (मि.ग्रा.)	0.8	7.6	8.2	0.2	0.2
9.	विटामिन सी (मि.ग्रा.)	220.0	15.8	17.3	4.5	120
10.	विटामिन ई (मि.ग्रा.)	448.0	10.8	113.0	751.0	–
11.	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	440.0	2185.0	2003.0	45.0	30.0
12.	मैग्नीशियम (मि.ग्रा.)	42.0	448.0	368.0	63.5	24.0
13.	फॉस्फोरस (मि.ग्रा.)	70.0	252.0	204.0	75.0	10.0
14.	पोटेशियम (मि.ग्रा.)	259.0	1236.0	1324.0	–	110
15.	कॉपर (मि.ग्रा.)	0.07	0.49	0.57	5.20	3.1
16.	लोहा (मि.ग्रा.)	0.85	25.6	28.2	–	5.3
17.	सल्फर (मि.ग्रा.)	–	–	870	0.05	137

सहजन का प्रसंस्करण

- सहजन की पत्तियों में आयरन, रेशा, विटामिन 'ए' एवं प्रोटीन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अत: पत्ती को सुखाने के उपरांत पाउडर बना कर उससे फलों एवं सब्जियों का पौष्टिक जूस बनाना।
- इसकी पत्तियों के पाउडर को सलाद में नमक व सलाद मसाले के साथ प्रयोग करना।
- फलियों का सांभर एवं सब्जी के रूप में प्रयोग करना।
- पत्तियों को जूस के रूप में प्रयोग करना।
- फूल की सब्जी।
- सहजन की फलियों का पाउडर।
- पत्तियों एवं फलियों के सत को निकालकर विभिन्न फलों में मिलाकर उत्पाद बनाना।

के नाम से भी जाना जाता है। सहजन की पत्तियों, फूल और बीजों में काफी मात्रा में एंटी-ऑक्सीडेंट्स होते हैं। ये एंटीऑक्सीडेंट्स शरीर में रेडियोएक्टिव प्रतिकारक को कम कर कैंसर और आर्थराइटिस जैसे गंभीर रोगों से बचाव करते हैं। सहजन की पत्तियों में कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, कैल्शियम, पोटेशियम, आयरन, मैग्नीशियम, विटामिन्स आदि प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

औषधीय गुण

बीज

- सहजन के बीज से पानी को शुद्ध करके पेयजल के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। इसके बीज को पाउडर के रूप में पीसकर पानी में मिलाया जाता है। पानी के साथ घुलकर यह एक प्रभावी प्राकृतिक क्लोरी-फिकेशन एजेंट बन जाता है। यह न सिर्फ पानी

फलियां

को बैक्टीरियारहित करता है बल्कि पानी की सान्द्रता को भी बढ़ाता है। इससे जीवविज्ञान के नजरिये से यह जल मानवीय उपयोग के लिए अधिक उपयुक्त बन जाता है।

पत्तियां

- सहजन की पत्तियों में कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, आयरन, पोटेशियम, मैग्नीशियम, विटामिन 'ए', 'सी', और 'बी', कॉम्प्लैक्स प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो खून की कमी एवं कुपोषण दूर करने में सहायक है। इसके अलावा सहजन के बीज के आटे को बच्चों को कुपोषण दूर करने के लिए भी खिलाया जा सकता है। यह एक अच्छा हेल्थ सप्लीमेंट है।
- सहजन में शुगर के स्तर को संतुलित रखने की क्षमता होती है। यह डायबिटीज से लड़ने में मदद करता है।
- चयापचय (मेटाबोलिज्म) को ठीक रखने के लिए सहजन के तत्वों का सेवन बेहतर माना गया है। यह पाचन क्रिया को सही रखने में मददगार है।
- सहजन की पत्ती का काढ़ा गठिया, सायटिका, पक्षाघात, वायु विकार में शीघ्र लाभ देता है।
- मोच आने पर सहजन की पत्ती की लुगदी बनाकर उसमें थोड़ा सा सरसों का तेल डालकर आंच पर पकाएं और फिर मोच के स्थान पर लगाने से शीघ्र ही लाभ होता है।
- सहजन के पत्तों का रस बच्चों के पेट के कीड़े निकालने एवं उल्टी, दस्त रोकने के काम में आता है।
- इसकी पत्तियों को पीसकर लगाने से घाव एवं सूजन ठीक हो जाती है।

पत्ती पाउडर

- इसकी पत्तियों के रस से उच्च रक्तचाप में लाभ होता है।
- सहजन विटामिन-ए का बेहतरीन स्रोत है। यह आंखों को स्वस्थ रखता है।

छाल

- सहजन की छाल में शहद मिलाकर पीने से वात व कफ शान्त हो जाता है।
- सहजन की छाल के काढ़े से कुल्ला करने पर दांतों के कीड़े नष्ट होते हैं और दर्द में आराम मिलता है।
- इसके पेड़ की छाल का प्रयोग गोंद बनाने में किया जाता है।

जड़

- जड़ का काढ़ा, सेंधा नमक व हींग के साथ पीने से मिर्गी के दौरों में लाभकारी होता है।
- सहजन की छाल का काढ़ा हींग व सेंधा नमक डालकर पीने से पित्ताशय की पथरी में लाभ होता है।

फूल

- इसके ताजे फूलों का प्रयोग हर्बल टॉनिक बनाने में किया जाता है।
- सहजन के फूल हृदय रोगों व कफ रोगों में उपयोगी होते हैं।

फलियां

- इसकी सब्जी खाने से पुराने गठिया जोड़ों का दर्द, वायु, संचार, वात रोगों में लाभ होता है।
- सहजन की सब्जी खाने से गुर्दे और मूत्राशय की पथरी कटकर निकल जाती है।

अत: सहजन एक ऐसा महत्वपूर्ण पेड़ है जो बेजोड़ पोषक तत्वों से भरपूर है। इसमें प्रचुर मात्रा में कैल्शियम और प्रोटीन पाया जाता है। इसमें दूध की तुलना में चार गुना कैल्शियम और दोगुना प्रोटीन होता है। प्राकृतिक रूप से इसमें मौजूद मैग्नीशियम शरीर में कैल्शियम को आसानी से पचाने में मदद करता है। इसमें पाया जाने वाला जिंक खून की कमी को पूरा करने में सहायक होता है। सहजन में ओलिक एसिड होता है, जो कि एक प्रकार का 'मोनोसैच्युरेटेड' वसा है और अधिक मात्रा में पाया जाता है, यह शरीर के लिए अति आवश्यक है। सहजन में अधिक मात्रा में कैल्शियम होने के कारण यह हड्डियों को मजबूती प्रदान करता है। इसमें पाया जाने वाला विटामिन-'सी' शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ा कर रोगों से लड़ने की शक्ति प्रदान करता है। सहजन मानव जीवन के लिए प्रकृति का वरदान है, क्योंकि इसमें कुपोषण दूर करने की अद्भुत क्षमता पाई जाती है। अत: सहजन की खेती के लिए किसान भाइयों को प्रेरित करना चाहिए। सहजन बिना ज्यादा लागत एवं मेहनत के आय का एक बहुत बढ़िया साधन हो सकता है।

सहजन के पेड़ की छाल

सिक्किम में इलायची की जैविक खेती

मातबर सिंह, एस.के. दास, रविकांत अवस्थी और **एस.एम. कण्डवाल**
भाकृअनुप-राष्ट्रीय जैविक कृषि अनुसंधान संस्थान, तादोंग-गगटोक (पूर्वी सिक्किम)

सिक्किम भारत का 22वां अत्यंत छोटा और सुरम्य पर्वतीय प्रदेश है। यह उत्तर में उत्तर-पूर्व तिब्बत, दक्षिण-पूर्व में भूटान, पश्चिम में नेपाल और दक्षिण में पश्चिम बंगाल से घिरा हुआ है। इसका सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल 7096 वर्ग कि.मी. है। यह पूरा प्रदेश पर्वतीय है तथा यहां समतल भूमि बहुत कम देखने को मिलती है। इसका ढाल उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर है। हिमालय की पूर्वोत्तर श्रृंखला में बसा यह प्रदेश जलवायु के दृष्टिकोण से काफी भिन्न है। यहां पर वार्षिक वर्षा 510 से 3300 मि.मी. के मध्य होती है। तापमान, वार्षिक वर्षा तथा समुद्र तल से ऊंचाई में असमानता, विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों को उगाने का पर्याप्त अवसर देती है। यह प्रदेश प्राकृतिक वन सम्पदा तथा विभिन्न प्रकार के फल-फूल एवं वनस्पतियों से भी परिपूर्ण है।

सिक्किम के उष्ण कटिबंधीय, समशीतोष्ण एवं शीत कटिबंधीय क्षेत्र में होने के कारण यहां सभी प्रकार के पेड़-पौधे पाए जाते हैं। यह प्रदेश 3871 मीटर की ऊंचाई तक घने जंगलों से आच्छादित है। इस समय 2000 मीटर की ऊंचाई तक जंगलों को साफ करके उन्हें सीढ़ीदार खेती के योग्य बनाया गया है। कृषि वानिकी पद्धति के द्वारा इस क्षेत्र में वृक्षों की जैव विविधता का संरक्षण होता है। सिक्किम मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान राज्य है। यह पूर्वोत्तर राज्यों की तुलना में कृषि के क्षेत्र में काफी आगे है। खरीफ की फसलों में धान, मंडुवा तथा फलों में संतरा, सेब, नाशपाती तथा आडू के अलावा सभी प्रकार के फल थोड़ी-बहुत मात्रा में पाए जाते हैं।

सब्जियों के क्षेत्र में भी सिक्किम का अपना विशेष स्थान है। यहां सभी प्रकार की सब्जियां उगायी जाती हैं। परंतु कुष्माण्ड कुल की सब्जियां अधिक मात्रा में उगाई जाती हैं। मसाले की फसलों में बड़ी इलायची और अदरक का स्थान सर्वोपरि है। बड़ी इलायची का प्रयोग मसाले के अलावा विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों को सुगंधित करने तथा दवाइयों को तैयार करने में किया जाता है। सुश्रुत द्वारा वर्णित ग्रंथ में भी इसका वर्णन है कि इसका प्रयोग 6वीं शताब्दी पूर्व आयुर्वेदिक दवाइयां बनाने में होता था। ग्रीक व रोमन भी इसे मसाले के रूप में प्रयोग करते थे। इसे अमोमम के नाम से भी जाना जाता है। इसका वर्णन ग्रीक दार्शनिक थोरोसिस के ग्रंथों में भी मिलता है। यह एक प्रकार का कैप्सूल (फल) है, जिसमें लगभग 2-3 प्रतिशत कुदरती तेल पाया जाता है। इसको सिनमोल के नाम से जाना जाता है।

शुरूआत में सिक्किम में लेप्चा लोग जंगलों से बड़ी इलायची के फलों को एकत्र करते थे। पहले ये जंगल, गांव के अधीन

होते थे। फिर इन्होंने वनों के साथ इलायची की खेती शुरू। सिक्किम में वृक्षों की छाया में बड़ी इलायची की खेती की जाती है। कृषि वानिकी पद्धति को अपनाकर बड़ी इलायची की उम्र तथा उपज दोनों को बढ़ाया जा सकता है। बड़ी इलायची की खेती खुले आसमान में करने से किसानों को प्रचुर मात्रा में उपज नहीं मिलती है और यह कुछ समय के बाद सूख जाती है।

क्षेत्रफल तथा उत्पादन

भारत में बड़ी इलायची उगाने वाले राज्यों में सिक्किम का प्रथम स्थान है। यहां यह फसल लगभग 15,600 हैक्टर भूमि में उगायी जाती है। इसका वार्षिक उत्पादन लगभग 3618 मीट्रिक टन है, जो देश के सम्पूर्ण बड़ी इलायची के उत्पादन का 60 प्रतिशत है।

उत्पत्ति

अनादिकाल से बड़ी इलायची का सिक्किम में पाया जाना, कृषि योग्य प्रजातियों में पर्याप्त विभिन्नता तथा जंगली प्रजातियों का उपलब्ध होना इस बात की तरफ इंगित करता है कि इसका उत्पत्ति स्थान सिक्किम ही है। यहीं से यह भारत के पड़ोसी देशों नेपाल, भूटान तथा देश के अन्य प्रांतों जैसे पश्चिम बंगाल, अरुणाचल प्रदेश और नगालैण्ड में फैला है।

बड़ी इलायची का पौधा

पौधे के गुण: बड़ी इलायची (एमोमम सुबुलेटम) जिंजिबेरेसी कुल का सदस्य है। यह एक बहुवर्षीय शाक है। इसका वास्तविक तना भूमि की सतह से थोड़ा नीचे अर्थात अधो-भूमिगत होता है और बहुत से 'आभासी तनों' को जन्म देता है। एक पौध समूह में लगभग 25-30 आभासी तने होते हैं। इन आभासी तनों का रंग प्रजातियों के अनुसार हरा या कुछ गुलाबी होता है। फल योग्य पौधे की ऊंचाई 1.8 से 2.5 मीटर के लगभग होती है। पत्तियां साधारण तथा 40-50 सें.मी. लंबी और 8-11 सें.मी. चौड़ी होती हैं। इनका रंग हरा या गहरा होता है। पत्तियां एकांतर क्रम में आभासी तने पर लगी रहती हैं। इसमें समानांतर शिरा विन्यास पाया जाता है। इसकी सतह रोमहीन होती है। पत्तियों का सिरा नोकदार होता है। अधोभूमिगत तनों से पुष्पक्रम का सृजन होता है। फूल एक सममित, उभयलिंगी, पीले या चमकीले पीले रंग के होते हैं। इनका आकार-प्रकार प्रजातियों के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है। इसमें परागण बम्बल बी द्वारा होता है। शुष्क फल लगभग गोलाकार (ग्लोबोज) तथा विकोष्ठीय होते हैं। इनका रंग गहरा गुलाबी होता है तथा सूखने पर गुलाबी कत्थई हो जाता है। एक पुष्पगुच्छ में लगभग 10-12 फल लगते हैं, जिनमें सुगंधित बीज भरे होते हैं। बीज गोल तथा कत्थई या काले रंग के होते हैं, जो मीठे श्लेष्म द्रव में धंसे होते हैं।

जलवायु

बड़ी इलायची की खेती बड़े वृक्षों की सघन छाया तले ढलुवां पहाड़ियों पर की जाती है। समुद्र तल से 500-600 मीटर की ऊंचाई के मध्य इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है। इस फसल को पानी की अधिक आवश्यकता होती है। 2000-3500 मि.ली. वार्षिक वर्षा तथा औसत ठंडक (3-28^0 तापमान) वाले क्षेत्रों में इसकी फसल काफी अच्छी होती है।

भूमि

अम्लीय ऊंची-नीची भूमि अथवा पहाड़ की ढलानों पर जहां अन्य फसलें कठिनता से

बड़ी इलायची

सिक्किम में बड़ी इलायची की खेती

हिमालय क्षेत्र सिक्किम के लोगों के लिए कृषि व पर्यटन, जीविकोपार्जन का प्राथमिक स्रोत है। सिक्किम एक छोटा राज्य है, जो भारत के पूर्वोत्तर में स्थित है। सन् 1990 से यह राज्य पर्यटन के क्षेत्र में धीरे-धीरे अपनी पहचान बना चुका है। कुल आबादी का एक छोटा सा हिस्सा पर्यटन में संलग्न है। यहां 70-80 प्रतिशत लोग आज भी अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर हैं। सिक्किम में कुल 16,949 किसान बड़ी इलायची की खेती कर रहे हैं। इसमें अधिकतर छोटे किसान हैं, जो 1 हैक्टर के जोत वाले होते हैं। लगभग 30 प्रतिशत किसान 1-3 हैक्टर वाले जोत वाले मिलते हैं तथा 30 प्रतिशत किसानों द्वारा खेती की जाती है। परंपरागत कृषि वानिकी पद्धति में किसान उत्तीस के पौधों को रोप रहे हैं, क्योंकि उत्तीस नाइट्रोजन को विस्थापित करता है। लगभग 31 प्रजाति के वृक्षों के साथ इसकी खेती की जाती है। इसका मुख्य कारण हैं यहां की मृदा का क्षरण बहुत ज्यादा होता है। सिंचाई की सुविधा का कोई प्रबंधन न होना, समय पर खाद व उर्वरक की उपलब्धता आदि भी इनमें से कुछ मुख्य कारण हैं। जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ खेती योग्य जमीन का भी बंटवारा हो रहा है, जिससे यहां पर 0.5 हैक्टर प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात हो गया है। इससे किसान नगदी फसल की तरफ जा रहे हैं। नगदी फसल जैसे-आलू, अदरक तथा संतरा। अदरक और संतरे से मृदा का अत्यधिक ह्रास होता है। इसलिए लोग बड़ी इलायची की खेती से उत्पादन को बढ़ा सकते हैं।

विषाणुजनित रोगों की रोकथाम

रोगजनित पौधों की पहचान होते ही पौधे को उखाड़कर जला देना चाहिए, जिससे रोग को फैलने से रोका जा सकता है। अत: वे तरीके अपनाये जाने चाहिए जो पर्यावरण व आर्थिक रूप से उपयुक्त हों। इनके प्रयोग से इस समस्या का निदान किया जा सकता है। जैसे:

- बगीचे में 10-15 दिनों के अंतराल में घूमना चाहिए। मुख्यत: वर्षा ऋतु के समय और रोगजनित पौधों को चिन्हित करना चाहिए।
- रोग लगे पौधे को जड़ सहित उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
- कभी भी पौधे को रोगजनित बगीचे (नर्सरी) से न लायें।
- नर्सरी को हमेशा मुख्य बगीचे से 500 मीटर की दूरी पर ही स्थापित करना चाहिए।
- हमेशा पुराने आभासी तने को निकाल देना चाहिए।
- कैप्सूल काटने में प्रयोग किया जाने वाला इलायची चाकू को कम से कम आधे घण्टे तक गर्म पानी में उबालें, जिससे रोग दूसरे पौधे में न फैलने पाए।

उगती हैं (पी-एच 4.5-6), यह फसल उगायी जा सकती है। परंतु कार्बनिक पदार्थों से युक्त ढलानयुक्त भूमि, जिसमें पानी के निकास का उचित प्रबंध हो, काफी अच्छी होती है।

बुआई की विधि

इसकी बुआई दो तरीकों से की जाती है:

- बीज से पौध उगाकर (नर्सरी तैयार करके)
- बड़े पौधे से कंद (राइजोम) को अलग करके।

दूसरी विधि काफी आसान एवं व्यावहारिक है। किसान इसी विधि को अपनाते हैं। इस विधि की सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें रोगों का प्रसार अधिक होता है।

बुआई का समय

बड़ी इलायची की बुआई का उचित समय जून से 15 जुलाई है, जबकि वर्षा पर्याप्त मात्रा में होती रहती है तथा तापमान भी ठीक रहता है। पहले से तैयार गड्ढों में बीज से तैयार की गई पौध या कंद की रोपाई करते हैं।

पौध से पौध की दूरी

पौधों से पौधों और पंक्ति से पंक्ति की दूरी भिन्न-भिन्न किस्मों में अलग होती है। 'राम साई' और 'सावने' को 150×150 सें.मी. दूरी पर 'राम नांग को 150×150 सें.मी. की दूरी पर तथा 'गोलसाई' को 90×90 सें.मी. की दूरी पर लगाते हैं।

निराई-गुड़ाई तथा देखभाल

साधारण कंद (राइजोम) द्वारा उगाये जाने वाले पौधों में तीन वर्ष बाद फल-फूल आने लगते हैं। परंतु बीज द्वारा बुआई पर 4-5 साल तक का समय लगता है। ऐसी परिस्थिति में यह अनिवार्य है कि इस अवधि में समय-समय पर खरपतवार निकाले जाएं, जिससे नये पौधों को बढ़ने का उचित अवसर मिले। जहां पर नये पौधे लगे हों वहां छाया का प्रबंध करना चाहिए। बीच-बीच में जो पौधे खत्म हो गए हों उनके स्थान पर नये पौधे लगाने चाहिए। यह तब तक करना चाहिए

सारणी : खेती योग्य किस्मों का संक्षिप्त विवरण

क्र. सं.	फसल व किस्म के नाम	समुद्र तल से धरातल की ऊंचाई (मीटर)
1.	रामसाई	1515
2.	गोलसाई	975
3.	रामला	1200-1500
4.	बारलांगे	>1515
5.	सरेमना	1000-1200
6.	सांवने	950-1515

बड़ी इलायची की किस्में

सिक्किम में खेती योग्य इसकी किस्में 'बारलांगे', 'सरेमना', 'रामसाई', 'गोल्साई', 'सावने' तथा 'रामला' पाई जाती हैं। इनके नामों की उत्पत्ति पूर्ण रूपेण स्थानीय है, जो पौधे के तने, पत्ती, फल-फूल के रंग एवं आकार-प्रकार तथा कटाई के समय आदि पर आधारित है। इन प्रजातियों के अलावा 'चीवे' 'कोपरिंगे' तथा 'भेली' आदि प्रजातियां भी हैं। परंतु ऐसा विश्वास किया जाता है, कि ये उपरोक्त किस्मों के ही भिन्न-भिन्न नाम हैं। मुख्य जंगली किस्म का नाम 'चुरूम्पा' है, जो स्थानीय है। यहां कुछ ऐसी भी किस्में हैं, जो वर्ष में दो बार फल-फूल देती हैं।

चारा पेड़ के साथ में बड़ी इलायची

जब तक कि नये पौधों में पहली बार फूल न आ जायें। फूल आने के बाद विशेष रूप से सफाई तथा देखभाल की आवश्यकता होती है। फूल आने का समय किस्मों के अनुसार अप्रैल-मई से प्रारंभ होता है और जून-जुलाई तक चलता रहता है। बाग की पहली निराई फरवरी-मार्च में करनी चाहिए तथा दूसरी मई में। दूसरी निराई के साथ-साथ जहां पर पौधे काफी घने हों, उन्हें निकाल देना चाहिए। इसमें खरपतवार के साथ-साथ सूखे डंठल तथा पत्तियों को निकाल देना चाहिए। देखभाल का उद्देश्य पौधों को प्रकाश के साथ उचित छाया प्रदान करना, अवांछनीय तनों तथा पंक्तियों को निकालना, रोग तथा कीटों से रक्षा तथा पराग के लिए कीटों को उचित अवसर देना आदि सम्मिलित है।

सिंचाई

बड़ी इलायची के पौधे पानी की कमी के कारण ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रह पाते हैं। प्रथम वर्ष में पौध रोपाई के बाद सूखे महीने (सितंबर-मार्च) तक 10 दिनों के अंतराल के बाद पौधों को पानी देते रहना चाहिए। यह देखा गया है कि जहां पर पानी की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में है, वहां इसकी बढ़वार व उपलब्धता होती है। पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है कि पानी ड्रिप सिंचाई विधि अथवा चैनल बनाकर भरपूर पौधे को दिया जाए। पानी का गड्ढा बनाकर वर्षा ऋतु का पानी एकत्र करके सूखे मौसम में पौधों की आवश्यकता को पूरा किया जा सकता है।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार को नियंत्रित करने से पौधों को उचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होंगे तथा साथ ही मृदा में नमी बनी रहती है। पौधों के चारों तरफ से खुरपी या हाथ से खरपतवार को निकाला जाना चाहिए। सूखे खरपतवार का प्रयोग पौधों की जड़ों में बिछावन के रूप में किया जाता है, जो मृदा से नमी को बचाये रखता है।

खाद एवं प्रबंधन

पोषक तत्व की कमी हो गई है तो उसे पूरा करने के लिए पूर्ण रूप से सड़ी हुई गोबर की खाद 5 कि.ग्रा. प्रति पौधे की दर से वर्ष में दो बार देनी चाहिए। प्रथम अप्रैल-मई तथा दोबारा अगस्त-सितंबर में देकर अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा 1 कि.ग्रा. प्रति पौधा को समान मात्रा में गोबर की खाद के साथ मिलाकर पौधों को देनी चाहिए।

परागण

बड़ी इलायची में परागण भौंरे के द्वारा होता है। यह सभी मध्य से ऊंचाई वाले भागों में पाया जाता है। इसको नेपाली भाषा में भौमरा, मोतिया तथा लेप्चा भाषा में तुगबुम के नाम से जाना जाता है। बड़ी इलायची में परागण मुख्य रूप से इनके द्वारा किया जाता है।

कटाई तथा सुखाना

बड़ी इलायची की कटाई का समय किस्मों के अनुसार अगस्त से प्रारंभ होता है और नवंबर तक चलता है। फलों को हंसिया के आकार के चाकू की सहायता से पूरे पुष्प गुच्छ सहित काट लेते हैं। इन्हें एक स्थान पर इकट्ठा करते हैं तथा पुष्पगुच्छ से पके फलों को अलग कर लेते हैं। इसके बाद इन्हें सुखाते हैं।

साधारणत: ताजे फलों को भट्ठियों के ऊपर सुखाते हैं। प्राय: ये भट्ठियां किसानों द्वारा इलायची के बाग में ही बनाई जाती हैं। पत्थर तथा मृदा की सहायता से साधारणतया 2.5 से 3 मीटर लंबी, 2 से 2.5 मीटर चौड़ी और 1.5 से 2 मीटर ऊंची दीवार बनाते हैं। भट्ठी के ऊपर बांस की

मिश्रित जंगल में बड़ी इलायची

बनी छत होती है, जिस पर ताजे फलों को फैलाकर सुखाते हैं। इन भट्ठियों में ताजी लकड़ियों का प्रयोग करते हैं, जो आंच बहुत कम और धुंआ अधिक देती हैं। इस प्रकार लगातार तीन दिनों तक सुखाते हैं। इस विधि से सुखाने पर फलों का भार 80-85 प्रतिशत कम हो जाता है तथा रंग भी अच्छा नहीं रहता है। अगर सुखाने का अच्छा प्रबंध हो तो फलों की मात्रा और गुण दोनों को बढ़ाया जा सकता है।

रोग तथा कीट

बड़ी इलायची पर रोग तथा कीटों का अधिक आक्रमण होता है। इसका कारण सिक्किम की जलवायु है। यहां पर घने जंगलों का पाया जाना, वातावरण में आर्द्रता, बादलों का लगा रहना, वर्षा अधिक होना, अनुकूल तापमान भी रोग तथा कीटों के लिए बहुत उपयुक्त होता है। इस फसल के प्रमुख रोग तथा हानिकारक कीट निम्नलिखित हैं:

पौध समूह सड़न या कंद सड़न रोग

यह रोग एक प्रकार की फफूंद से होता है जिसे पिथियम कहते हैं। इसके आक्रमण से अधोभूमिगत कंद सड़ने लगता है। आभासी तना भूमि की सतह से पीला पड़ कर नष्ट हो जाता है। स्थान-स्थान पर पूरा पौध समूह (क्लम्प) ही सड़कर नष्ट हो जाता है।

पत्ती धब्बा रोग

यह रोग एक प्रकार के फफूंद से होता है जिसे 'पेस्टेलोसिया' कहते हैं पत्ती की सतह पर गहरे कत्थई रंग के धब्बे बन जाते हैं जिनके चारों तरफ का रंग पीला होता है। कई धब्बे आपस में मिलकर बड़ा धब्बा बनाते हैं। इससे पूरी पत्ती सूख जाती है। इसकी रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर 15 दिनों के अंतराल पर घोल का छिड़काव करना चाहिए।

हेअरी कैटर पिलर

यह बड़ी इलायची का सबसे खतरनाक कीट है। यह सिक्किम में पाई जाने वाली बड़ी इलायची की सभी किस्मों पर एवं सभी बागों में पाया जाता है। इसके आक्रमण से 40-45 प्रतिशत तक का नुकसान होता है। 1978 में इस कीट ने उत्तरी सिक्किम की सम्पूर्ण इलायची की फसल को नष्ट कर दिया था। इसका आक्रमण सबसे अधिक जून और जुलाई में होता है।

रोकथाम

- बागान में हमेशा साफ-सफाई का ध्यान रखना चाहिए।
- कीट से ग्रसित पौधों को तुरंत नष्ट कर देना चाहिए। इससे अन्य पौधे को वृद्धि के लिए उपयुक्त वातावरण मिलेगा।
- हमेशा स्वस्थ एवं कीटरहित पौधों की रोपाई करनी चाहिए।
- परागण की क्रिया में सहायक होने वाले कीट-पतंगा जैसे-बम्बल बी, मधुमक्खी या जंगली मधुमक्खी को बचाना चाहिए।
- जून में 20 दिनों के अंतराल में नीम तेल का 5-7 मि.ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए।

छाया का प्रबंधन

बड़ी इलायची के पौधों को छायादार नमीयुक्त स्थान पर उगाना ज्यादा लाभदायक होता है। वृक्षों से लगभग 50 प्रतिशत छाया पौधों को बढ़वार और पैदावार के लिए मिलनी चाहिए। इससे इलायची के पौधों को सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है तथा पौधों की बढ़वार भी तेजी से होती है। इसलिए छायादार वृक्ष वाले खेत में इलायची लगानी चाहिए।

चिरके

यह भी एक विषाणुजनित रोग है। इसके आक्रमण से पत्तियों पर चितकबरे धब्बे बनते हैं और बाद में इन पर कत्थई धारियां बन जाती हैं। अंत में पत्तियां सूख कर लटक जाती हैं। इस प्रकार उपज में भारी कमी होती है। यह रोग भी माहूं (एफिड) के द्वारा ही फैलता है। इस रोग को फैलाने वाले माहूं हैं, 'रोपेलोसीफम मेडिस', 'रोपेलोसीफम पाड़ी', 'ब्रेचीकाउस हेलीक्कांइसी' तथा 'सीटोबिआन एवेनी'। प्राथमिक प्रसार रोगी पौधों से कंद लेकर बुआई करने से होता है। 'सावने तथा कोपरिंगे' किस्में इस रोग की काफी हद तक रोधी पाई गई हैं। रोकथाम के अन्य तरीके 'फुरके' की भांति हैं।

फुरके

यह एक विषाणुजनित रोग है। इससे बहुत अधिक हानि होती है। रोगी पौधों का पुष्पक्रम छोटी-छोटी पत्ती जैसी रचनाओं में बदल जाता है और बंध्या आभासी तनों को जन्म देता है। धीरे-धीरे भूमि के ऊपर रहने वाले पौधे का सम्पूर्ण भाग समाप्त हो जाता है और उसके स्थान पर मात्र छोटी-छोटी पत्ती जैसी रचनायें ही शेष रह जाती हैं। दो-तीन साल में पूरा पौध समूह समाप्त हो जाता है। इस रोग के विषाणु एक प्रकार के माहूं (एफिड) द्वारा फैलते हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- नये स्थान पर अगर इलायची की फसल लगानी हो तो बीज से पौध उगाकर लगानी चाहिए।
- रोगग्रसित पौध समूह (क्लम्प) को निकालकर जमीन के काफी नीचे गाड़ देना चाहिए।
- रोगरोधी किस्म को बोना चाहिए।
- माहूं की रोकथाम के लिए उचित जैविक दवाओं का प्रयोग करना चाहिए।

उपज

शुष्क बड़ी इलायची की औसत उपज लगभग 100-400 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर होती है।

आर्थिक लाभ

पर्वतीय परिसर के अनुसंधान में पाया गया कि बड़ी इलायची की खेती उत्तीस व दूसरी प्रजाति के साथ करने पर आर्थिक लाभ अन्य फसल पद्धतियों की तुलना में ज्यादा होता है। इस पद्धति को अपनाकर किसान लगभग 1,00,000 रुपये प्रति हैक्टर की दर से तीसरे साल से लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

आदिकाल से ही बड़ी इलायची सिक्किम प्रदेश में प्राकृतिक रूप से उगाई जा रही है। अब सिक्किम प्रदेश पूर्ण रूप से जैविक राज्य बन चुका है, इस बात को मद्देनजर रखते हुए कृषि वानिकी पद्धति के अनुरूप बड़ी इलायची को रसायनमुक्त परिवेश में उत्पादित कर सकते हैं। यह एक उच्च आर्थिक लाभ अर्जित करने वाली मुख्य फसल बन सकती है। इससे निश्चित रूप से कृषकों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति में सुधार हो पाएगा। ■

फलों की बागवानी से प्राकृतिक संसाधन संरक्षण

पी.आर. मेघवाल[1], अकथ सिंह[2] और **प्रदीप कुमार[3]**

बढ़ते जलवायु परिवर्तन के खतरों से लड़ने के लिए उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का कुशल उपयोग करना अति महत्वपूर्ण है। हालांकि, भारत 91.10 मिलियन मीट्रिक टन प्रतिवर्ष (2015-16) फल उत्पादन के साथ विश्व में दूसरे स्थान पर है। फिर भी बढ़ती जनसंख्या को पर्याप्त मात्रा में सस्ती दर पर फल उपलब्ध करवाने के लिए फलों का क्षेत्रफल व उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। परंपरागत फल उत्पादन क्षेत्र अपनी अधिकतम क्षमता तक पहुंच चुका है, अब विस्तार की संभावना शुष्क व परती भूमि क्षेत्रों में करना एक अच्छा विकल्प हो सकता है। परंतु शुष्क क्षेत्रों की मुख्य समस्या सिंचाई के लिए पानी की कमी तथा प्रतिकूल वातावरण है। शुष्क क्षेत्रीय फल कम पानी तथा प्रतिकूल वातावरण में भी उत्पादन देने की क्षमता रखते हैं। अत: ऐसे फलों की उन्नत किस्मों व कुशल जल प्रबंध तकनीकों को अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ किसानों की आमदनी भी बढ़ाई जा सकती है।

मरुस्थलीय क्षेत्रों में वर्षा की अनिश्चितता के कारण फसलों की परंपरागत खेती से फसल उत्पादन में जोखिम बना रहता है। इन क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में वर्षा का न होना, बीच-बीच में सूखे की स्थिति बनना, फसल अवस्थाओं की जरूरत के अनुसार वर्षा का वितरण न होना तथा समय से पूर्व मानसून का विदा होना इत्यादि कारणों से बारानी खेती कम फायदेमंद होती है। ऐसी स्थिति में बहुउद्देशीय व बहुवर्षीय फल वृक्षों को अपनाकर अधिक आमदनी प्राप्त की जा सकती है। शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई के लिए केवल 10 प्रतिशत क्षेत्र में ही पानी उपलब्ध है। इसलिए दीर्घकालिक अवधि तक सिंचाई के लिए शुष्क क्षेत्रीय फलों की उन्नत किस्मों को अपनाकर प्राकृतिक संसाधनों का अधिक समय तक उपयोग करने के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण व सुधार भी किया जा सकता है। प्रमुख शुष्क क्षेत्रीय फलों व उनकी उन्नत किस्मों का विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी-1 में दिए गए शुष्क क्षेत्रीय फल वृक्षों का चयन सिंचाई पानी की उपलब्धता के अनुसार करना चाहिए। बेर, करौंदा, गून्दा, झड़बेरी इत्यादि को शुरू में पूरक सिंचाई या वर्षा जल संग्रहण द्वारा उगाया जा सकता है। बड़े होने पर ये फल बारानी अवस्था में भी कुछ उत्पादन मानसून वर्षा की मात्रा की दर से देते हैं। इन फलों

[1]प्रधान वैज्ञानिक (फल विज्ञान); [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक (फल विज्ञान); [3]वरिष्ठ वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान), भाकृअनुप-केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

का उत्पादन पूरक सिंचाई द्वारा बढ़ाया जा सकता है। अन्य फल वृक्ष जैसे अनार, आंवला, नीबू, खजूर इत्यादि शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त फल वृक्ष हैं, जिनका चयन सिंचाई की उपलब्धता के अनुसार करना चाहिए।

फलवृक्ष प्रवर्धन एवं बाग की स्थापना

विभिन्न फलदार पौधों की प्रसारण विधियां, लगाने की दूरी तथा समय इत्यादि सारणी-2 में दर्शायी गई हैं।

समन्वित कीट-व्याधि प्रबंधन

छालभक्षी कीट

यह कीट नई शाखाओं के जोड़ पर छाल के अंदर घुसकर जोड़ को कमजोर कर देता है। इसके फलस्वरूप वह शाखा टूट जाती है। इसकी रोकथाम के लिए खेत को साफ-सुथरा रखें, गर्मी में पेड़ों के बीच में गहरी जुताई करें। जुलाई-अगस्त में डाइक्लोरवास 76 ई.सी. 2 मि.ली. का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर नई शाखाओं के जोड़ों पर दो-तीन बार छिड़कें।

चेफर बीटल

इसका प्रकोप जून-जुलाई में अधिक होता है। यह पेड़ों की नई पत्तियों एवं प्ररोहों को नुकसान पहुंचाता है। इससे पत्तियों में छिद्र हो जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए पहली वर्षा के तुरंत बाद क्यूनालफॉस 25 ई.सी. 2 मि.ली. या कार्बोरिल 50 डब्ल्यूपी 4 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

छाछ्या

इस रोग का प्रकोप वर्षा ऋतु के बाद अक्टूबर-नवंबर में दिखाई पड़ता है। इससे बेर की पत्तियों, टहनियों व फूलों पर सफेद पाउडर सा जमा हो जाता है, इससे प्रभावित भागों की बढ़वार रुक जाती है और फल व पत्तियां गिर जाती हैं। इसकी रोकथाम के लिए केराथेन एलसी 1 मि.ली. या घुलनशील गंधक 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। 15 दिनों के अंतर पर दो-तीन छिड़काव पूर्ण सुरक्षा के लिए आवश्यक होते हैं।

सूटीमोल्ड

इस रोग से ग्रसित पत्तियों के नीचे की सतह पर काले धब्बे दिखाई देने लगते हैं, जो बाद में पूरी सतह पर फैल जाते हैं और रोगी पत्तियां गिर जाती हैं। नियंत्रण के लिए रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैन्कोजेब 3 ग्राम या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

करौंदा

करौंदा एक कांटेदार झाड़ी वाला पौधा हैं। अधिकतर इसको खेतों की बाड़ पर लगाया जाता है। पूर्ण विकसित अवस्था में इसके पौधे घनी कांटेदार झाड़ी का रूप ले लेते हैं। यह पौष्टिक फल उत्पादन के साथ-साथ एक रक्षक-जीवित बाड़ का काम करती है। करौंदे की बाड़, बगीचे में लगे अन्य पौधों के लिए सूक्ष्म वातावरण पैदा करती है। साथ ही वायु तथा जल द्वारा होने वाले भूक्षरण को रोकने में भी सहायक होती है। करौंदे के फल पैक्टिम, ऊर्जा (कार्बोहाइट्रेट) तथा खनिज लवणों से युक्त होते हैं। करौंदा के फलों से चटनी, टार्ट, पुडिंग, सब्जी, स्क्वैश, सीरप, जैली आदि बनाई जा सकती है। करौंदा सूखारोधी झाड़ी है। यह उष्ण व उपोष्ण जलवायु में अच्छा पनपता है। शुष्क क्षेत्रों में भी आंशिक सिंचाई देकर इसको लगाया जा सकता है। यहां तक कि ऐसी मृदा जिसका पी-एच 10 तक हो, इसे उगाया जा सकता है।

खाद व उर्वरक

करौंदे में देसी खाद ही पर्याप्त रहती है। हालांकि बाड़ लगाते समय 100 ग्राम यूरिया प्रति पौधा देने से पौधे तेजी से बढ़ते हैं और बाड़ जल्दी तैयार होती है। पूर्ण विकसित पौधों में 10-15 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु के समय देनी चाहिए।

कटाई-छंटाई

बाड़ के रूप में लगे पौधों को हेज की तरह आगे व पीछे की तरफ से काटते हैं, जबकि पौधों की बीच में कटिंग नहीं करते हैं ताकि इनकी शाखाएं आपस में मिलकर घनी बाड़ का रूप ले सकें। बगीचे के रूप में लगे पौधों में नीचे से निकलने वाली शाखाओं को समय-समय पर निकालते रहना चाहिए। साथ ही रोगग्रस्त व सूखी टहनियों को भी हटाते रहें।

सिंचाई

करौंदे के पौधे एक बार लगने के पश्चात आसानी से नहीं जाते हैं। नियमित फल लेने के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। इसमें मार्च-अप्रैल में फूल आते हैं, इसलिए गर्मियों में 10-12 दिनों के अंतराल पर लगभग 200 लीटर पानी प्रति पौधा देना चाहिए। वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता लगभग नहीं के बराबर रहती है।

फलों की तुड़ाई व उपज

करौंदे में फूल दो सीजन यानि कि मार्च-अप्रैल तथा अक्टूबर-नवंबर में आते हैं। मार्च-अप्रैल वाला सीजन मुख्य होता है। इसके फल अगस्त-सितंबर में तैयार होते हैं। फलों को पूरी तरह पकने से पहले तोड़ने से ही वे अचार, चटनी या अन्य उपयोग के लिए उपयुक्त रहते हैं। पूर्णतः पके फल बीज के लिए काम में लेते हैं। औसत उपज लगभग 10-15 कि.ग्रा. प्रति झाड़ी होती है। परंतु काजरी द्वारा विकसित किस्म मरू गौरव की उपज 40-50 कि.ग्रा.प्रति झाड़ी प्राप्त की गई है।

अनार

कटाई-छंटाई

आरंभ से पौधों को 3-4 मुख्य शाखाओं पर नियंत्रित कर, भूमि की सतह से निकलने वाली शाखाओं को समय-समय पर हटाते रहें एवं रोगग्रस्त व सूखी शाखाओं को भी काटते रहें। जून में पौधों के ऊपरी भागों से पतली शाखाओं को काट देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

सामान्यतया 10 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 250 ग्राम नाइट्रोजन, 125 ग्राम फॉस्फोरस तथा 125 ग्राम पोटेशियम प्रतिवर्ष प्रति पेड़ देना चाहिए। प्रत्येक वर्ष इसकी मात्रा इस प्रकार बढ़ाते रहना चाहिए कि पांच वर्ष बाद प्रत्येक पौधे को क्रमशः 625 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस तथा 250 ग्राम पोटेशियम दिया जा सके।

शुरू में तीन वर्ष तक जब पौधों में फल नहीं आ रहे हों, उर्वरकों को तीन बार में जनवरी, जून तथा सितंबर में देना चाहिए तथा चौथे वर्ष में जब फल आने लगें तो फलत लेने के मौसम के अनुसार दो बार में देना चाहिए। शुष्क क्षेत्रों में मृग बहार लेने की संस्तुति की जाती है। अतः देसी खाद की पूरी मात्रा व रासायनिक उर्वरकों के आधे भाग को मध्य जून तथा शेष को अक्टूबर में पौधों के चारों तरफ एक से डेढ़ मीटर की परिधि में 15-20 सें.मी. गहराई में डालकर मृदा में मिला देना चाहिए। अनार की खेती में सूक्ष्म तत्वों का एक अलग महत्व है। इसके लिए जिंक सल्फेट (6 ग्राम/लीटर), फेरस सल्फेट (4 ग्राम/लीटर) तथा बोरेक्स (4 ग्राम/लीटर) या मल्टीप्लेक्स 2 मि.ली./लीटर का पर्णीय छिड़काव फूल आने तथा फल बनने के समय करना चाहिए।

सिंचाई एवं जल प्रबंधन

अनार के सफल उत्पादन के लिए सिंचाई एक महत्वपूर्ण कारक है। गर्मियों में 5-7 दिनों, सर्दियों में 10-12 दिनों तथा वर्षा ऋतु में 10-15 दिनों के अंतराल पर 20-40 लीटर/पौधा सिंचाई की आवश्यकता होती है। अनार में टपक सिंचाई पद्धति अत्यधिक लाभप्रद है। इससे 20-43 प्रतिशत पानी की बचत होती है। साथ ही 30-35 प्रतिशत उपज में भी बढ़ोतरी हो जाती है। फल फटने की समस्या का भी कुछ सीमा तक समाधान हो जाता है। मृदा नमी को संरक्षित रखने के लिए काली पॉलीथीन (150 गेज) का पलवार बिछाना चाहिए तथा केओलीन के 6 प्रतिशत (6 ग्राम/लीटर) घोल का पर्णीय छिड़काव करना काफी लाभप्रद रहता है।

सारणी 1. शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फल वृक्ष/किस्में

फल वृक्ष	उपयुक्त उन्नत किस्में
बेर	गोला, काजरी गोला, मुन्डिया (अगेती), सेब, बनारसी, कैथली, गोमा कीर्ति (मध्यम), उमरान, इलायची, टीकड़ी (पिछेती)
अनार	जालोर बेदाना, गणेश, जी-137, जी-131, मृदुला, अरकता, भगवा इत्यादि।
आंवला	चकैया, एन.ए.-7, कंचन, कृष्णा, आनन्द-2
गून्दा	काजरी-2025, काजरी-2021, काजरी-2012 व अन्य स्थानीय किस्में
करौंदा	पंत मनोहर, पंत सुदर्शन, पंत सुवर्णा, काजरी करौंदा-2011, काजरी करौंदा-2013, काजरी करौंदा-2022 व काजरी करौंदा-2031
नीबूवर्गीय फल	कागजी, विक्रम, प्रमालिनी, बारामासी, किन्नो, ब्लड रेड माल्टा, मोसम्बी
बेल	धारा रोड़, फैजाबादी लोकल, एन.बी.-5, एन.बी.-9, लाल जीत, सांभीपुरी, पंत उर्वशी, पंत अपर्णा
खजूर	हलावी, बारही, खुनेजी, मस्कट, जहीदी, मेडजूल,
अंजीर	पूना, दिनोंकर, डीयना, ब्लेक इश्चिया

पत्ती धब्बा/झुलसा रोग

इस रोग के लक्षण नवंबर में शुरू होते हैं। यह रोग ऑल्टरनेरिया नामक फफूंद के आक्रमण से होता है। रोगग्रस्त पत्तियों पर छोटे-छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं। बाद में ये धब्बे भूरे रंग के तथा आकार में बढ़कर पूरी पत्ती पर फैल जाते हैं, जिससे पत्तियां सूखकर गिरने लगती हैं। नियंत्रण के लिए रोग दिखाई देते ही मैन्कोजेब 3 ग्राम या थायोफिनेट मिथाइल 1 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अंतर पर 2-3 छिड़काव करें।

बहार नियंत्रण

राजस्थान के लिए मृग बहार की फसल अच्छी पाई गई है, इसमें मार्च से जून तक आंशिक पानी देते हैं। जुलाई में पूर्ण सिंचाई के साथ खाद एवं उर्वरक देते हैं, जिससे जुलाई-अगस्त में फूल आते हैं। इससे ही दिसंबर-जनवरी के दौरान फलों की उपलब्धता हो पाती है, जो कि उच्च गुणवत्तापूर्ण होते हैं।

कीट व्याधियां एवं नियंत्रण

अनार की तितली

कार्बोरिल 50 डब्ल्यूपी (0.2 प्रतिशत) व डेल्टामेथ्रिन (0.002 प्रतिशत) का एक के बाद दूसरे का छिड़काव 21 दिनों के अंतराल पर करें। केराथेन (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव माइट के नियंत्रण के लिए करें।

पत्ती धब्बा रोग

यह जीवाणु से होता है। नियंत्रण के लिए पोसामाइसिन (500 पीपीएम) का 0.2 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के साथ छिड़काव करें। फफूंदजनित पत्ती धब्बे के नियंत्रण के लिए मैन्कोजेब 0.2 प्रतिशत या टोपसीन-एम 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव करें।

फलों की तुडाई एवं उपज

अनार के फल लगने के 120-150 दिनों बाद पक जाते हैं। औसत उपज 15 टन प्रति हैक्टर होती है।

आंवला

आंवला कम देखरेख एवं कम खर्चे में भी अच्छा उत्पादन दने वाला फल है। इसके फल विटामीन 'सी' व खनिज लवणों का भंडार होते हैं। इसी कारण इनका औषधीय महत्व है। यह कई तरह की मृदा क्षारीय/लवणीय तथा जिनका पी-एच ज्यादा हो, उसमें भी पनप जाता है।

खाद व उर्वरक

शुष्क क्षेत्रों में आंवला में खाद एवं उर्वरकों पर कोई विशेष कार्य नहीं हुआ है।

फिर भी सामान्यत: सारणी-3 में दर्शाई गयी मात्रा में खाद व उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

गोबर की खाद व सुपर फॉस्फेट की पूरी मात्रा तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश व यूरिया की आधी मात्रा मार्च-अप्रैल में डालें व शेष बची यूरिया तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा अगस्त-सितंबर में फल लगने के बाद दें। बोरॉन तत्व की कमी से फलों की गुणवत्ता में कमी आ सकती है, अत: सितंबर से अक्टूबर माह में 0.6 प्रतिशत बोरेक्स के 2-3 छिड़काव 10-15 दिनों के अंतर पर करने चाहिए। इससे फलों का विकास अच्छा होता है तथा फलों का गिरना कम हो जाता है।

कटाई-छंटाई

आंवले में कटाई-छंटाई की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती है। आरम्भिक वर्षों में 2-3 फीट की ऊंचाई तक एकल तना रखकर 4-5 मजबूत शाखाएं जो सभी दिशाओं में निकली हों, का चयन करके अन्य को हटा देना चाहिए। प्रतिवर्ष कुछ शााखाएं सूखती रहती हैं। उन्हें मार्च-अप्रैल में पत्तियां गिरने के पश्चात काट देना चाहिए।

कीट एवं व्याधियां

आंवले की फसल में विभिन्न प्रकार के रोग एवं कीटों का प्रकोप हो सकता है। शुष्क क्षेत्रों में किसी विशेष रोग एवं कीटों का प्रकोप इसमें नहीं देखा गया है। इस तरह यहां पर आंवले की खेती करने पर दवाइयों के छिड़काव पर खर्चा नहीं के बराबर आता है। मुख्य रूप से दीमक के आक्रमण का भय बना रहता है। इसके नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरीफॉस नामक दवा का 0.3 प्रतिशत घोल बनाकर पौधों के तने के चारों ओर की मृदा में समय-समय पर डालना चाहिए।

सिंचाई

सिंचाई की बारंबारता भूमि की किस्म तथा जलवायु पर निर्भर करती है। शुष्क क्षेत्रों में ज्यादातर बलुई मृदा पाई जाती है। इसलिए थोड़ा-थोड़ा पानी बार-बार देना पड़ता है। अगर वर्षा ठीक-ठाक हो तो जुलाई से सितंबर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसके बाद अक्टूबर-नवंबर में 15 दिनों के अंतर पर व मार्च से जून तक प्रति सप्ताह सिंचाई करनी चाहिए जबकि दिसंबर-जनवरी में सिंचाई रोक देनी चाहिए।

फलों की तुड़ाई एवं उपज

फल लगने के बाद 170-200 दिनों

बेर

बेर प्रमुख शुष्क क्षेत्रीय फल है जिसकी खेती सतत् आमदनी देती है। शुष्क क्षेत्रों में बार-बार अकाल की स्थिति से निपटने के लिए यह बीमा का कार्य करता है। बेर में सेब के तुल्य पोषक तत्व विद्यमान होते हैं। यह विटामिन 'सी', आयरन, कैल्शियम, फॉस्फोरस इत्यादि का उत्तम स्रोत है। फलों के अलावा इससे पशुओं के लिए चारा तथा जलावन लकड़ी भी मिल जाती है।

बेर का बगीचा लगाने के बाद प्रथम दो-तीन वर्षों के दौरान पौधों को निश्चित आकार व दिशा प्रदान की जाती है, जिससे बड़ा होने पर इससे अधिक उत्पादन व गुणवत्तापूर्ण फल मिल सके। इसके अतिरिक्त इसमें हर वर्ष मई-जून में वार्षिक कटाई अति आवश्यक होती है। चूंकि इसमें फूल व फल नई शाखाओं पर लगते हैं, इसलिए हर वर्ष पिछले साल की शाखाओं के आधार से तीन-चार आंख (बड) छोड़ शेष भाग को काट दिया जाता है। छोड़े गए आधार भाग की आंखों से नई शाखाएं निकलकर उस वर्ष फल उत्पादन देती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ शाखाओं को उनके निकलने के स्थान से ही काटते हैं ताकि शाखाओं के बीच समुचित जगह नई शाखाओं के फैलने व हवा तथा रोशनी के लिए मिल सके।

सिंचाई

बेर को एक बार स्थापित हो जाने के बाद बहुत ही कम सिंचाई की जरूरत पड़ती है। गर्मी की सुषुप्तावस्था के बाद 15 जून तक अगर वर्षा नहीं हो तो सिंचाई आरंभ करें, ताकि नई बढ़वार समय पर शुरू हो सके। इसके बाद अगर मानसून की वर्षा का वितरण ठीक हो तो सितंबर तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। सितंबर में फूल आने शुरू हो जाते हैं और 15 अक्टूबर तक फल लग जाते हैं। इस दौरान हल्की सिंचाई करें। इसके बाद अगर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो 15 दिनों के अंतर पर सिंचाई करने से उत्पादन में बढ़ोतरी होती है। फल पकना शुरू होने के बाद सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

साधारणतया एक पूर्ण विकसित पेड़ (> 5 वर्ष) में 20-30 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 600 ग्राम नाइट्रोजन तथा 250 ग्राम फॉस्फोरस प्रतिवर्ष प्रति पेड़ की दर से दी जाती है। गोबर की खाद तथा फॉस्फोरस की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा जुलाई तथा शेष बची नाइट्रोजन को नवंबर में फल लगने के बाद देते हैं। इसके अतिरिक्त बोरॉन (0.5 प्रतिशत) तथा जिंक सल्फेट (0.6 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव फूल आने व फल लगने के समय करना चाहिए। पोटाश की मात्रा मृदा में पोटाश की उपस्थिति की दर से निर्धारित कर सकते हैं। साधारणतया 250 ग्राम पोटाश प्रतिवर्ष प्रति पेड़ की दर से देना चाहिए।

बेल से लदा पेड़

सारणी 2. फलदार पौधों की प्रवर्धन विधियां, लगाने का समय एवं वृक्षों की आपस में दूरी

फल वृक्ष	प्रवर्धन विधियां/समय	दूरी (मीटर)	उचित समय
आंवला	कलिकायन (पेच) जुलाई-अगस्त	6 × 6	जुलाई-अगस्त
बेर	कलिकायन (आई/टी)/जुलाई-अगस्त	6 × 6	जुलाई-अगस्त
अनार	सख्त काष्ठ कलम, गूंटी/जुलाई-अगस्त	4 × 4	जुलाई-अगस्त
बेल	कलिकायन (पेच)/मई-जुलाई	6 × 6	जुलाई-अगस्त
अंजीर	कलिकायन, कलम/जुलाई-अगस्त	5 × 5	जुलाई-अगस्त
खजूर	सकर्स/टिश्यू कल्चर	8 × 8	जुलाई-अगस्त
नीबू	कलिकायन/बीज/गूंटी, मार्च/जुलाई-अगस्त	5 × 5	जुलाई-अगस्त
गून्दा	बीज, कलिकायन/मई, जुलाई-अगस्त	6 × 6	जुलाई-अगस्त
करौंदा	बीज/अगस्त-सितंबर	5 × 5	जुलाई-अगस्त

सारणी 3. आयु अनुसार वृक्षों को दी जानेवाली उर्वरकों की मात्रा

वृक्ष की आयु	गोबर की खाद कि.ग्रा./पेड़	उर्वरक कि.ग्रा./पेड़		
		यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1 वर्ष	20-25	0.220	0.350	0.125
2 वर्ष	20-25	0.440	0.700	0.250
3 वर्ष	20-25	0.660	1.05	0.375
4 वर्ष	20-25	0.880	1.40	0.375
5 वर्ष व अधिक	20-25	1.100	1.75	0.375

बाद फल तोड़ने लायक होते हैं। पकने पर फलों का रंग हल्का हरा या हल्का पीला हो जाता है। औसत उपज 6-7 वर्ष बाद 60-100 कि.ग्रा. प्रति पेड़ हो सकती है।

गुन्दा या लसोड़ा

गुन्दा या लसोड़ा एक बहुवर्षीय व बहुपयोगी फल वृक्ष है, जिसके कच्चे फल सब्जी व अचार बनाने में उपयोगी होते हैं। इसके फलों को सुखाकर परिरक्षित करना भी आसान होता है।

गुन्दे दो प्रकार के होते हैं: (1) छोटे फल वाले (फल वजन 3-4 ग्राम) तथा (2) बड़े फल वाले (फल वजन 6-10 ग्राम)। बड़े फल वाले गुन्दे सब्जी या अचार में ज्यादा उपयोगी होते हैं। छोटे फल वाले गुन्दों के पेड़ों को मूल वृन्त के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

प्रवर्धन

आमतौर पर गुन्दों का प्रवर्धन बीज द्वारा ही किया जाता है। (अंकुरण केवल 20-30 प्रतिशत) वैज्ञानिक तरीके से गुन्दों के पेड़ों को छोटे फल वाले गुन्दों के बीजू पौधों पर कालिकायन कर तैयार किया जाता है। इसके लिए बीजों की बुआई जून में तथा कलिकायन अगस्त में किया जा सकता है।

पौधों की रोपाई

कलिकायन किए पौधों की रोपाई जुलाई-अगस्त में 6 × 6 मीटर की दूरी पर तैयार 2 × 2 × 2 फीट के आकार के गड्ढों में 10 कि.ग्रा. कम्पोस्ट व 100 ग्राम मिथाइल पेराथियान से मिश्रित मृदा में करें।

पेड़ों की सधाई

पहले तीन वर्ष तक पेड़ों को अत्यधिक सधाई की जरूरत पड़ती है। पेड़ों को भूमि से एक मीटर ऊपर तक एकल तना छोड़कर 3-4 शाखाओं को चारों दिशाओं में बढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

सिंचाई

नये पौधों को पहले तीन वर्षों तक नियमित सिंचाई की जरूरत पड़ती है। इसके पश्चात फरवरी से अप्रैल तक 15 दिनों के अंतराल पर लगभग 400 लीटर पानी प्रति पेड़ देना चाहिए।

खाद

पूर्ण विकसित पेड़ को 20-25 कि.ग्रा. कम्पोस्ट या 30-40 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रतिवर्ष जुलाई-अगस्त में देनी चाहिए।

पत्तों की तुड़ाई

एक समान व अगेती फसल के लिए पेड़ों की पत्तियों की तुड़ाई जनवरी के प्रथम सप्ताह में करें।

फलों की तुड़ाई एवं उपज

फलों की तुड़ाई पूर्ण विकसित होने से पहले हरी अवस्था में करनी चाहिए। फलों के लगने के पश्चात 25-30 दिनों बाद फल तुड़ाई की सही अवस्था होती है। बीज तैयार करने के लिए फलों की तुड़ाई इनके पूरे पकने के बाद हल्के पीले रंग में बदलने पर करनी चाहिए। औसत उपज 50-60 कि.ग्रा. प्रति पेड़ वर्ष पैदा होती है।

इस द्विमाही में टटोलें बागों की नब्ज

राम रोशन[1] और **हरे कृष्ण**[2]

वसंत ऋतु के आगमन के साथ जहां मार्च में शीत का प्रकोप प्रभावहीन हो जाता है वहीं अप्रैल में मैदानी क्षेत्रों में गर्मी भी दस्तक देने लगती है। यही कारण है कि बागों में की जाने वाली कृषि क्रियाओं की हलचल भी बढ़ जाती है। ऐसे में यह जरूरी है कि इस द्विमाही बागों की नब्ज टटोली जाए, ताकि आवश्यक कृषि कार्यों को समय रहते पूरा किया जा सके। मार्च-अप्रैल की द्विमाही के दौरान सदैव हरे रहने वाले फलों, जैसे आम, अमरूद, लीची, नीबूवर्गीय फल आदि के नए बाग लगाए जा सकते हैं। शीतोष्ण वर्गीय फलों जैसे सेब, नाशपाती, आड़ू, आलूबुखारा आदि में पुष्पन की क्रिया भी शुरू हो जाती है। अधिकतर हरे रहने वाले फलों में भी पुष्पन की क्रिया शुरू हो जाती है। अतः इस द्विमाही के दौरान बागवानों को फूलों को गिरने से बचाने के लिए सिंचाई से बचकर पुष्पन के दौरान परागण प्रबंधन करना होता है। इसके अतिरिक्त फल लगने के तुरंत बाद सिंचाई का समुचित प्रबंध भी आवश्यक है, जिससे फलों के विकास पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़ सके। इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण फलों में मार्च-अप्रैल की द्विमाही में की जाने वाली प्रमुख कृषि क्रियाओं का संक्षिप्त विवरण इस लेख में दिया गया है।

केला

मार्च के प्रथम सप्ताह से केले के बाग में साप्ताहिक अंतराल पर सिंचाई करें। केले के बागों में नाइट्रोजन की 25 ग्राम (55 ग्राम यूरिया) मात्रा पौधे से 40-50 सें.मी. दूर गोलाई में डालकर चारों तरफ से गुड़ाई कर मिट्टी में मिलाएं तथा सिंचाई करें। केवल एक तलवारी पत्ती (भूस्तारी) को छोड़कर पौधे के आधार से निकलने वाली अन्य पत्तियों को काट दें। नाइट्रोजन की 60 ग्राम मात्रा को 10 लीटर पानी में डालकर छिड़काव करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें। अप्रैल में भी केले के बाग में आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य करें। यदि कोई विषाणुग्रस्त पौधा दिखाई दे तो तुरंत ही उसे नष्ट कर बाग में किसी भी उचित कीटनाशी जैसे, रोगर का छिड़काव करें ताकि विषाणु-वाहक चूषक कीटों को नियंत्रित किया जा सके।

आम

अन्य फलों की तरह आम के लिए यह द्विमाही बहुत ही महत्वपूर्ण है। मार्च में आम में पुष्पन की क्रिया के बाद फल लगने की क्रिया शुरू होती है। पुष्पन के दौरान किसी भी कीटनाशी का प्रयोग न करें एवं न ही बागों की सिंचाई करें। परंतु फल लगने के तुरंत बाद सिंचाई का समुचित प्रबंध आवश्यक होता है। इसी समय फलों में कुछ रोगों एवं कीटों का भय हमेशा बना रहता है। फुदका या तेला (मैंगो हॉपर) के नियंत्रण के लिए इमिडाक्लोरोपिड (0.02 प्रतिशत) तथा चूर्णिल

[1]खाद्य विज्ञान एवं फसलोत्तर प्रौद्योगिकी संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [2]भाकृअनुप-केंद्रीय शुष्क बागवानी अनुसंधान संस्थान, बीछवाल, बीकानेर-334006 (राजस्थान)

चूर्णिल आसिता से ग्रसित आम का बौर

आसिता रोग से बचाव के लिए केराथेन (20 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव मार्च के प्रथम सप्ताह में अवश्य करें। इसके अतिरिक्त, ग्रसित पुष्प गुच्छों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए। मिलीबग (गुजिया) से बचाव के लिए वृक्षों के तने पर पॉलीथीन की 3 फुट चौड़ी पट्टी बांध देनी चाहिए। पौधों की अपेक्षा जमीन पर किसी कीटनाशी का छिड़काव प्रौढ़ कीटों को मारने के लिए करें।

साधारणत: अप्रैल में फलों का विकास तीव्र गति से होता है, अत: नियमित रूप से बाग की सिंचाई 15 दिनों के अंतराल पर अवश्य करें। नमी संरक्षित करने के लिए वृक्षों के नीचे जैविक-पलवार का प्रयोग करें। फलों को फुदका या तेला से बचाने के लिए इमिडाक्लोरोपिड (0.02 प्रतिशत) तथा चूर्णिल फफूंद रोग से बचाव के लिए केराथेन (20 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव करें। इस माह आम के बागों में एक वर्ष के वृक्षों के लिए 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फेट व 50 ग्राम पोटाश जो क्रमश: बढ़ाकर 10 वर्ष या उससे अधिक उम्र के पौधे के लिए प्रति वृक्ष 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फेट तथा 500 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

अप्रैल में फलों के गिरने को रोकने के लिए फूल बनने की अवस्था से लेकर फल बनने तक प्लेनोफिक्स का 4.5 मि.ली./लीटर प्रति गैलन की दर से तीन बार छिड़काव करें। इसके लिए 2 प्रतिशत यूरिया का घोल भी फलों के निंबोली जैसे होने पर (निंबोली अवस्था) कर सकते हैं। आम में क्षय रोग के नियंत्रण के लिए 0.8 प्रतिशत बोरैक्स का छिड़काव करें।

इन महीनों में नए लगे पौधों पर ज्यादा ध्यान देने की आवश्यकता होती है। नए पौधों को एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई अवश्य दें। लू व गर्मी से बचाने के लिए इन्हें दक्षिण-पूर्व दिशा को छोड़कर (ताकि सूर्य का प्रकाश मिल सके) तीन ओर से छप्पर (पुआल) से ढक दें।

अमरूद

मार्च में पेड़ों के थालों में गुड़ाई कर देनी चाहिए ताकि कीटों के प्यूपों को उनके प्राकृतिक शत्रु नष्ट कर सकें। उत्तर भारत में पुराने अनुत्पादक लेकिन स्वस्थ पेड़ों को भूमि की सतह से 75 सें.मी. की ऊंचाई तक काटकर जीर्णोद्धार किया जा सकता है। इसी

अंगूर

अंगूर की मुख्य शाखा से अनावश्यक पत्तियों को तोड़ दें तथा लता को जाल पर व्यवस्थित कर दें। अंगूर के फलों का आकार व भार बढ़ाने के लिए 50 प्रतिशत से अधिक फूल खिलने की अवस्था पर 30-40 मि.ग्रा. जिब्रेलिक एसिड प्रति लीटर पानी में (किस्म के अनुसार) मिलाकर छिड़काव करें। नई बेलों में सिंचाई 10-15 दिनों में अंतराल पर करें। यदि एंथ्रेक्नोज (श्यामव्रण) रोग का प्रकोप हो तो बैविस्टिन (0.2 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव एक सप्ताह के अंतराल पर दो बार करें। चूर्णिल फफूंद की रोकथाम के लिए केराथेन (0.1 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव अथवा सल्फर की धूल का प्रयोग करें। इन महीनों में थ्रिप्स का भी प्रकोप कहीं-कहीं रहता है। इसकी रोकथाम के लिए मैलाथियान के (500 मि.ली. प्रति 500 लीटर पानी में) घोल का छिड़काव करें। अंगूर में एक वर्ष के पौधे के लिए 50 ग्राम नाइट्रोजन व 40 ग्राम पोटाश तथा क्रमश: बढ़ाकर 5 वर्ष या इससे अधिक उम्र के पौधे में 250 ग्राम नाइट्रोजन व 200 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।

लीची

मार्च में लीची में फल लगने शुरू हो जाते हैं। अत: बागों में पानी की समुचित व्यवस्था करें। चूर्णिल आसिता रोग के प्रकोप से बचाने के लिए लीची में संस्तुत रसायनों का प्रयोग करें। लीची के नवरोपित बागों की सिंचाई करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें। अप्रैल में पौधों की 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए ताकि फलों में नियमित वृद्धि होती रहे। लीची में माईट के प्रकोप को कम करने के लिए डाइमिथोएट (100 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव लाभकारी रहता है। लीची के बागों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। लीची में फलछेदक की रोकथाम के लिए डाईक्लोरोवास आधा मि.ली. प्रति लीटर पानी (0.05 प्रतिशत) या 2 मि.ली. प्रति 5 लीटर पानी (0.04 प्रतिशत) में घोल बनाकर छिड़काव करें।

अमरूद में पुष्पन

अलूचे के वृक्षों में पुष्पन

प्रकार द्वितीयक शाखाओं को भी उनके आधार से 75 सें.मी. की ऊंचाई तक काटने से पुराने वृक्षों को नवजीवन दिया जा सकता है। अमरूद की फसल वर्षा व जाड़े के मौसम में आती है। अत: अच्छी पैदावार के लिए केवल एक फसल लेनी चाहिए। यदि वर्षा वाली फसल लेनी हो तो प्रति पौधा 50 कि.ग्रा. देसी खाद, 1/2 कि.ग्रा. यूरिया, 1 1/4 कि.ग्रा. सुपर फॉस्फेट और 750 ग्राम पोटाश देनी चाहिए। यदि वर्षा ऋतु में फसल नहीं चाहिए तो इन महीनों में सिंचाई रोक देनी चाहिए तथा हाथों से फूलों को अलग कर देना चाहिए अथवा नए कल्लों (एक पत्ती युग्म) की छंटाई अथवा 15 मई तक नेप्थेलीन एसिटिक एसिड 600 पी.पी.एम. (6 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी में) का 15 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करें। अमरूद में उकठा रोग के नियंत्रण के लिए 20-30 ग्राम बाविस्टीन 10-15 लीटर पानी में मिलाकर प्रति पौधा जड़ों में प्रयोग करें। साथ ही 15 ग्राम जिंक सल्फेट व 1 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। एंथ्रेक्नोज (श्याम व्रण) रोग के प्रभाव होने पर फल गिरने लगते हैं। अत: ब्लिटॉक्स के 0.25 प्रतिशत घोल (250 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव करें।

फल मक्खी के नियंत्रण के लिए मिथाइल यूजीनोल के बोतल-ट्रैप (10-15 प्रति हैक्टर), जिनमें 100 मि.ली. 0.1 प्रतिशत मिथाइल यूजीनोल और 0.1 प्रतिशत मैलाथीयोन हो, को बाग में विभिन्न जगहों पर लटकाएं। पौधों में जिंक की कमी हो जाने पर पत्तियां छोटी एवं पीली पड़ जाती हैं। इसके नियंत्रण के लिए आधा कि.ग्रा. जिंक सल्फेट और आधा कि.ग्रा. बुझे चूने का घोल 100 लीटर पानी में बनाकर इसका छिड़काव 15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार नई पत्तियों के आने पर करना चाहिए। बोरॉन की कमी से पत्तियों के छोटे आकार, फलों के फटने एवं उनके सख्त होने से बचने के लिए पौधों पर 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करें।

बेर

मार्च में बेर की अधिकतर किस्में पकने लगती हैं। अत: फसल की तुड़ाई कर उचित बिक्री की व्यवस्था करें। बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें। अप्रैल के अंत तक लगभग सभी पेड़ों के पत्ते गिर जाते हैं और पेड़ काट-छांट के लिए तैयार हो जाते हैं। इस समय सिंचाई रोक देनी चाहिए और पेड़ों के नीचे कचरे की सफाई करा देनी चाहिए।

अलूचा

मार्च में पुष्पन की क्रिया के दौरान अलूचे के बाग में मधुमक्खियों के 4 से 5 छत्ते प्रति हैक्टर की दर से रखें। बाग में पुष्पन के दौरान कीटनाशी का प्रयोग न करें। इससे परागक कीट मर सकते हैं, जिससे परागण की क्रिया प्रभावित होगी। पुष्पन के दौरान सिंचाई से बचना चाहिए, परंतु फल लगने के तुरंत बाद सिंचाई का समुचित प्रबंध भी करना जरूरी है। ग्रीष्म ऋतु आते ही अलूचा में खरपतवार का प्रकोप बढ़ जाता है। अत: समय-समय पर इन्हें निकाल देना चाहिए। अलूचे के वृक्षों के समुचित विकास के लिए एक सप्ताह के अंतराल पर नियमित रूप से सिंचाई करनी चाहिए। जिन जगहों पर सिंचाई की उचित व्यवस्था न हो वहां पेड़ों के नीचे पलवार (मल्च) बिछा देनी चाहिए। इसके अन्य लाभ भी हैं, जैसे इसके प्रयोग से खरपतवार का उगना कम हो जाता है। यह मृदा के तापमान को भी ठीक रखती है साथ ही अच्छी गुणवत्ता के फल भी प्राप्त होते हैं।

अलूचे की कुछ किस्मों जैसे ब्यूटी, सांता रोजा और मैथिली में अधिक फल लगते हैं। पेड़ों की शाखाएं फलों का भार न सह सकने के कारण टूट जाती हैं। इसके लिए उन्हें बांस या मजबूत लकड़ी का सहारा देना चाहिए।

जापानी अलूचा की लगभग सारी किस्मों में बहुत फल लगते हैं। यदि सभी फलों को पेड़ों पर छोड़ दिया जाए तो फल छोटे आकार के होते हैं। अत: फलों की छंटाई कर देनी चाहिए। फलों की छंटाई हाथ से करें अथवा नेप्थेलीन एसिटिक एसिड अम्ल 50 पी.पी.एम. (50 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव करें।

पौधों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। अत: 0.5 प्रतिशत यूरिया के घोल का पर्णीय छिड़काव

नीबू में पुष्पन एवं फलन साथ-साथ

फूलों की पंखुड़ियों के झड़ने से लेकर फलों के पकने के 2 सप्ताह पहले तक करें। जिंक और लौह तत्व की कमी की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और फेरस सल्फेट के घोल का पर्णीय छिड़काव करें। चिड़ियों से फलों की रक्षा करनी चाहिए तथा यदि पत्ती खाने वाले कीट का प्रकोप हो तो सेविन (कार्बेरिल) के 0.05 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

नीबूवर्गीय फल

नीबू में यदि फरवरी में उर्वरक न दिया गया हो तो उसे देकर, वृक्षों में सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करें। पौधशाला के पौधों की नियमित सिंचाई, गुड़ाई और निराई करते रहना चाहिए। बाग में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। मौसम में अधिक तापमान व बढ़ती गर्मी के कारण फलों की बढ़वार रुक सकती है एवं फलों का गिरना एक प्रमुख समस्या बन जाता है। अत: 2, 4डी (10 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) का छिड़काव करना काफी लाभदायक रहता है। फलों को फटने से बचाने के लिए 100 मि.ग्रा. जिबरेलिक एसिड प्रति 10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

फालसा

फरवरी से प्रारंभ हुई पुष्पन की प्रक्रिया मार्च में भी जारी रहती है। फलों की अधिकांश वृद्धि अप्रैल तक हो जाती है। अत: फालसे के फलों की उचित बढ़वार के लिए 15 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से सिंचाई करें। कुछ क्षेत्रों में, फालसे में फलों का पकना अप्रैल के अंतिम सप्ताह में शुरू हो जाता है। इसके फल अत्यंत नाजुक होते हैं, अत: इनकी तुड़ाई सुबह या शाम में करनी चाहिए और तुरंत बाद फलों को बाजार में भेजने की समुचित व्यवस्था करें। चूंकि फालसा के फल एक-साथ नहीं पकते हैं, अत: उन्हें नियमित रूप से तोड़ने की आवश्यकता होती है। तुड़ाई से 5 दिनों पूर्व, इथ्रेल के 1000 पीपीएम का छिड़काव करने से 70 प्रतिशत फलों के परिपक्वन में एकरूपता लाई जा सकती है।

पपीता

मार्च में पपीते के बीज नर्सरी में बोने का काम समाप्त कर लेना चाहिए। पूरे बाग में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई नियमित रूप से करनी चाहिए। पपीता के नवरोपित बागों की सिंचाई कर बागों की निराई-गुड़ाई एवं सफाई का कार्य करें।

स्ट्रॉबेरी

पहाड़ी क्षेत्रों में किसान स्ट्रॉबेरी को केवल नए पौधे तैयार करने के लिए लगा सकते हैं। अत: यदि पौधों पर फूल आ रहे हैं तो उन्हें तुरंत हटा दें, परंतु मैदानी भागों में किसान ऐसा न करें। मैदानी भागों में मार्च में स्ट्रॉबेरी की फसल तैयार हो जाती है। इसे तोड़कर, 250 ग्राम के पन्नेट में पैक कर बाजार भेजने की व्यवस्था करें।

चीकू

मार्च में पौधों में 8 से 10 दिनों के अंतराल पर नियमित रूप से पानी डालें। सूखी पत्ती, घास या धान के पुआल से भरी एक टोकरी प्रत्येक वृक्ष के थालों में फैलाएं। इससे न केवल मिट्टी की नमी संरक्षित होती है अपितु खरपतवार की वृद्धि भी कम हो जाती है। अप्रैल में 5 से 7 दिनों के अंतराल पर, ड्रिप माध्यम से नियमित सिंचाई सुनिश्चित करें। मृदा को ढीली और भुरभुरी रखने के लिए निराई-गुड़ाई तथा पलवार लगाने का कार्य किया जाना चाहिए।

खजूर

विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु अनुसार, खजूर में पुष्पन की प्रक्रिया फरवरी से अप्रैल तक जारी रहती है। चूंकि खजूर में नर और मादा पुष्पक्रम अलग-अलग वृक्षों पर खिलते हैं, अत: मार्च से अप्रैल में कृत्रिम परागण की क्रिया को सुनिश्चित करना आवश्यक होता है। हाथ द्वारा परागण की क्रिया ही सामान्य रूप से अपनाई जाती है। नर पुष्पक्रमों से परागकण एकत्रित करने के लिए, ताजे एवं पूरी तरह से खिले हुये नर पुष्पक्रमों को अखबार के कागज पर झाड़कर एकत्रित कर लेते हैं। इसके बाद बारीक छलनी से छानकर छह घंटे सूर्य के प्रकाश में एवं अठ्ठारह घंटे छाया में सुखाते हैं। सुखाये गए परागकणों को शीशियों में भरकर कमरे के सामान्य तापमान पर आठ सप्ताह तथा रेफ्रिजरेटर में एक वर्ष तक भंडारित कर सकते हैं। कृत्रिम परागण के लिए परागकणों को रूई के फाहों की सहायता से मादा पुष्पक्रमों पर पुष्पों के खिलने के तुरंत पश्चात सुबह के समय छिड़क सकते हैं। मादा पुष्पक्रमों को इस प्रकार दो-तीन दिनों तक लगातार परागित करें। वैकल्पिक रूप से नर पुष्पक्रमों की लड़ियों को काटकर खुले मादा पुष्पक्रम के मध्य उलटकर हल्के से बांध दें, ताकि उनमें से परागकण धीरे-धीरे मादा पुष्पों पर गिरते रहें। फलों के सेट होने के तुरंत पश्चात सिंचाई की व्यवस्था सुनिश्चित करें ताकि फलों की वृद्धि पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। ■

सेब

पुष्पन की क्रिया के बाद फल लगने की क्रिया शुरू होती है। पुष्पन की क्रिया के दौरान बाग में मधुमक्खियों के 4 से 5 छत्ते प्रति हैक्टर की दर से रखें। बाग में किसी भी कीटनाशी का प्रयोग न करें, क्योंकि इससे परागक कीट मर सकते हैं। इससे परागण की क्रिया प्रभावित होगी जो कि कम फलन का कारण बन सकती है। ठीक इसी प्रकार पुष्पन के दौरान सिंचाई न करके, फल लगने के तुरंत बाद सिंचाई का समुचित प्रबंध करें। इसी समय फलों में कुछ रोगों एवं कीटों का भय हमेशा बना रहता है। तनों की छाल को गर्मी से बचाने के लिए घास से बांध देना चाहिए। इस मौसम में अपस्थानिक शाखाएं (सकर) भी बहुत निकलती हैं। ये पौधों से अधिकाधिक पोषक तत्व लेती हैं, अत: इनको जल्द से जल्द हटा देना चाहिए। इस मौसम में फलों का गिरना भी प्रमुख समस्या है, इसे रोकने के लिए नेफ्थेलीन एसिटिक अम्ल का छिड़काव फलों के लगने के चार से पांच सप्ताह बाद करना चाहिए। चूर्णिल फफूंद का प्रकोप होने पर केराथेन 0.03 प्रतिशत (300 ग्राम प्रति 100 लीटर पानी में) या चूना और गंधक को 1:40 के अनुपात में मिलाकर छिड़काव करें। गंधक चूने के उपयोग से रोगों और कीटों दोनों को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि पौधों में जिंक की कमी हो तो 0.1 प्रतिशत (1 कि.ग्रा. प्रति 100 लीटर पानी में) जिंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करना चाहिए। बोरॉन की कमी होने पर 0.5 प्रतिशत सुहागा (5 कि.ग्रा. प्रति 100 लीटर पानी में) के घोल का छिड़काव करें।

सेब में पुष्पन

धनिया की उन्नत खेती

महावीर सुमन[1]

धनिया औषधीय गुणों से युक्त होता है। इसके पके हुए बीजों को भारतीय भोजन में मूलत: मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा कई प्रकार के खाद्य पदार्थों, पेय पदार्थों, मद्यों एवं इत्रों आदि में भी इसका इस्तेमाल किया जाता है। इसकी हरी पत्तियां प्रोटीन, शर्करा, विटामिन-'बी' एवं विशिष्ट प्रकार की खुशबूयुक्त होने के कारण चटनी व सलाद में भी प्रयोग की जाती हैं।

धनिया की खेती सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है, लेकिन जल निकास वाली दोमट भूमि इसके लिए श्रेष्ठ है। असिंचित क्षेत्रों में जलधारण क्षमता वाली काली मृदा में भी इसकी खेती की जा सकती है। धनिया के लिए पालारहित ओस टपकने वाली कम गर्म व ठंडी जलवायु अनुकूल है। बुआई से पूर्व खेत की दो-तीन गहरी जुताई करके मृदा को भुरभुरी बना लेना चाहिए। सिंचित क्षेत्रों में यदि पर्याप्त नमी नहीं हो तो पलेवा करके भूमि की तैयारी करनी चाहिए।

बीज व बुआई

सामान्यत: दाने की फसल के लिए 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक बुआई का समय उपयुक्त रहता है। अच्छे उत्पादन के लिए 15-20 कि.ग्रा./हैक्टर बीज पर्याप्त होता है। बीजोपचार के लिए बाविस्टिन की 3 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। बुआई से पूर्व बीजों को रगड़कर दो भागों में विभाजित करना चाहिए। बुआई के समय यदि तापमान अधिक है तो अंकुरण प्रभावित होता है। मृदा नमी के आधार पर बुआई का सबसे उपयुक्त समय 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक है। धनिया की 30 सें.मी. कतार से कतार की दूरी तथा 5 सें.मी. बीज से बीज एवं 3-4 सें.मी. गहराई पर बुआई करना चाहिए। पत्तियों के लिए सालभर इसकी खेती की जा सकती है। बीज का अंकुरण लगभग 12 दिनों के अंदर हो जाता है। बीज की बुआई उत्तर-दक्षिण की दिशा में करनी चाहिए। इससे पौधे में प्रकाश संश्लेषण अधिक होता है।

किस्में

सी.एस.-2 (सिन्धु), साधना, सी.एस. -6 (स्वाति), सी.एस.-287, को-1, को-2,, को-3, आर.सी.आर-20, आर.सीआर.-41 (कर्ण), आर.सी.आर-435, आर.सी.आर. -446, पंत हरितमा, ए.सी.आर.-1

सिंचाई

सिंचित क्षेत्रों में पलेवा के अतिरिक्त 4-5 सिंचाइयों की आवश्यकता हल्की मृदा में व 2-3 सिंचाई की आवश्यकता भारी मृदा में पड़ती है। काली/भारी मृदा में ज्यादा सिंचाई करने पर छाछ्या रोग ज्यादा लगता है। इसलिए पहली सिंचाई 35-40 दिनों बाद व दूसरी 70-80 दिनों बाद करनी श्रेष्ठ रहती है। हल्की मृदा में सिंचाई बुआई के 30-35 दिनों बाद, दूसरी 50-60 दिनों बाद, तीसरी सिंचाई 70-80 दिनों बाद, चौथी सिंचाई 90-100 दिनों बाद व पांचवीं 105-110 दिनों बाद करें।

निराई-गुड़ाई

धनियां की बढ़वार शुरू में धीमी रहती है इसलिए निराई अनिवार्य है। सिंचित क्षेत्रों में पहली निराई-गुड़ाई, बुआई के 40 से 50 दिनों बाद करें। इसी समय पौधों के बीच 5 से 10 सें.मी. का फासला रखते हुए पौधों की छंटाई कर दें। असिंचित क्षेत्रों में बुआई के 30-35 दिनों बाद निराई-गुड़ाई अवश्य करें, जिससे खरपतवार निकल जाए व भूमि में नमी भी संचित रहे। खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथालिन 1 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व

[1]विद्यावाचस्पति शोध छात्र, फल विज्ञान (उद्यान विज्ञान), औद्यानिकी एवं वानिकी महाविद्यालय, झालावाड़, कृषि विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

(स्टाम्प 3.3 ली) प्रति हैक्टर की दर से 750 लीटर में घोलकर अंकुरण पूर्व छिड़काव करें। छिड़काव के समय भूमि में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है।

खाद व उर्वरक

अच्छी फसल के लिए 15-20 टन/हैक्टर सड़ी गोबर की खाद बुआई से पूर्व खेत में मिलाएं। सिंचित क्षेत्रों के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 20 कि.ग्रा. पोटाश की मात्रा प्रति हैक्टर की दर से देनी चाहिए। इसमें एक तिहाई नाइट्रोजन तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा अंतिम जुताई के समय देनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन दो बार में प्रथम सिंचाई व दाना बनते समय देनी चाहिए। यदि एक सिंचाई की सुविधा हो तो शेष नाइट्रोजन एक बार में सिंचाई के बाद देनी चाहिए। असिंचित क्षेत्रों के लिए 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस 20 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर की दर से बुआई के समय देनी चाहिए।

कटाई व उपज

किस्म के अनुसार फसल 80-140 दिनों में पक जाती है। पकने पर दानों का रंग हल्का पीला हो जाता है। इसी समय कटाई करके किसी छायादार स्थान पर गहाई करते हैं तथा 8-10 प्रतिशत नमी की अवस्था में बोरी में भरते हैं। सिंचित क्षेत्र में लगभग 15-20 क्विंटल/हैक्टर तथा असिंचित क्षेत्र में 6-8 क्विंटल/हैक्टर उपज प्राप्त होती है। फसल कटाई प्रातः काल करनी चाहिए। काटने के पश्चात पौधे को उलटा रखकर सुखाना चाहिए।

व्याधियां

छाछ्या

रोग के प्रारंभ में पत्तियां, फूलवृंत व तने पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है। उग्र होने से तनों पर भी चूर्ण नजर आने लगता है।

कीट

चेंपा (मोयला)

धनिया में मोयला का प्रकोप फूल आते समय या उसके बाद होता है। यह पौधों के कोमल भागों से रस चूसता है, जिससे उपज में भारी कमी आती है। चेंपा का आक्रमण क्षेत्र में उगाई सरसों की परिपक्वता से बढ़ता है। सरसों में पाया जाने वाला चेंपा माइजस पर्सिकी धनिये में स्थानांतरित हो जाता है, क्योंकि धनिया पूर्ण रूपेण हरी होती है। सरसों इस चेंपा की परपोषी पौधे के रूप में पहली पसंद है। अतः यदि धनिया के खेत में सरसों के पौधे की बुआई कर रहे हैं तो वह धनिया की बजाय सरसों पर नुकसान करेगा। अतः बचाव के लिए धनिया के बीज के साथ कुछ दाने सरसों के डाले जा सकते हैं। सरसों के हरे रहने तक धनिया में चेंपा के लगने की आशंका कम रहती है। सरसों के पूर्णरूप से चेंपा से संक्रमित होने के बाद इसे उखाड़कर नष्ट कर दें। चेंपा नियंत्रण के लिए फसल पर डाईमेथोएट 1 मि.ली./लीटर पानी की दर से 500 लीटर पानी का घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। चूर्णयुक्त कीटनाशी मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत का 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर बुरकाव भी प्रभावी रहता है।

कटुआ सूंडी

इसकी सूंडी भूरे काले रंग की होती है। इसकी सूंडियां अंधेरे में सक्रिय रहती हैं। रात में इनके द्वारा बहुत नुकसान होता है। फसल की शुरूआत में ये पौधों को काटकर नीचे गिरा देती हैं। नियंत्रण के लिए जुताई के दौरान प्रति हैक्टर 20-25 कि.ग्रा. की दर से क्लोरोपायरीफॉस 5 प्रतिशत चूर्ण का बुरकाव करें।

बरूथी/माइट

यह कीट भी पौधों से रस चूसता है। नियंत्रण के लिए सल्फर चूर्ण 20-25 कि.ग्रा./हैक्टर का बुरकाव या घुलनशील गंधक 2 कि.ग्रा./हैक्टर को 500 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव उत्तम रहता है।

बीजबेधक

इस कीट का आक्रमण बीज बनने के समय होता है। कीट बीज के अंदर का भाग खाकर नष्ट कर देता है। प्रभावित फसल की उपज में बहुत कमी आती है। अतः दाने बनते समय एसीफेट 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से प्रयोग अवश्य करें।

चने की सूंडी

अधिक बीज व खाद के प्रयोग, सघन फसल ज्यामितीय एवं कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से यह कीड़ा धनिया को भी नुकसान पहुंचा रहा है। इसके नियंत्रण के लिए एसीफेट 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

धनिया की हरी पत्तियां

रोगग्रस्त पौधों में दानों का विकास या तो होता ही नहीं है या बहुत कम होता है। उपज की गुणवत्ता बहुत निम्न रहती है। नियंत्रण के लिए घुलनशील सल्फर 3 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

झुलसा रोग

इस रोग में पौधों के तने तथा पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई पड़ते हैं, जिससे पत्तियां मुरझा जाती हैं। नियंत्रण के लिए मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

लौंगिया/तनापिटिका

रोगी पौधों की पत्तियों व तने पर फफोले बन जाते हैं। नमी से रोग की तीव्रता बढ़ जाती है। ग्रसित पौधों के दाने का आकार लौंग जैसा हो जाता है। इसलिए इसे लौंगिया रोग भी कहते हैं। नियंत्रण के लिए बीजोपचार बाविस्टीन 1.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से कर बुआई करें। रोग के लक्षण दिखने पर फूल बनने से पूर्व कार्बोन्डाजिम का 1 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

उकठा रोग

इस रोग का प्रकोप पौधे की किसी भी अवस्था में हो सकता है। यह रोग पौधे की छोटी अवस्था में ज्यादा लगता है। प्रभावित पौधों की जड़ों पर संक्रमण होता है। नियंत्रण के लिए खेतों की मृदा पलटने वाले हल से गहरी जुताई करें। रोगरहित फसल के बीजों को ही बुआई के लिए प्रयोग में लें। रोगी खेत में 3-4 वर्ष तक धनिया नहीं बोयें व बाविस्टीन 1.5 ग्राम से प्रति कि.ग्रा. बीज की बीजोपचार करके बुआई करें। धनिया के खेत के चारों तरफ गेंदे के पौधे लगाना लाभदायक रहता है।

भाकृअनुप की झांकी 'मिश्रित खेती-आय दोगुनी'

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा गणतंत्र दिवस परेड समारोह-2018 में प्रस्तुत झांकी में समेकित कृषि प्रणाली को दर्शाया गया था। यह कृषि प्रणाली दो या अधिक कृषि उद्यमों के मिश्रण पर आधारित है और इसमें न्यूनतम संसाधन स्पर्धा के अलावा अधिकतम आपसी परिपूरकता की स्थिति होती है। इससे पर्यावरण हितैषी कृषि उत्पादन, रोजगार, आय एवं पारिवारिक पोषण में भी सहायता मिलती है।

हमारे देश में फसल तथा पशुपालन (गाय, भैंस, बकरी, भेड़, सूअर आदि) पर आधारित कृषि प्रणाली काफी लोकप्रिय है और 86 प्रतिशत से ज्यादा किसान इससे जुड़े हुए हैं। समेकित कृषि प्रणाली मॉडल में फसल पद्धतियों, बागवानी, डेरी, पोल्ट्री, सूअरपालन तथा जलजीव संवर्द्धन भी शामिल हैं जिनका चयन क्षेत्र, भू स्वामित्व, श्रम उपलब्धता तथा निवेश के लिए धनराशि की उपलब्धता पर निर्भर करता है। यह कृषि प्रणाली गुणवत्तापूर्ण आहार के साथ कृषि, पोषण एवं जलवायु अनुकूल कृषि तथा दोगुनी कृषि आय हेतु छोटे एवं सीमांत कृषकों के लिए विशेष तौर पर उपयुक्त है।

झांकी के अगले हिस्से में कृषकों के लिए आय बढ़ोतरी में मददगार और जलवायु हितैषी कृषि तकनीकियों का विकास करते वैज्ञानिक दर्शाए गए हैं। इस प्रणाली में जैविक फसल पद्धति पर आधारित फसल प्रणाली के महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है, जो कि देश के पूर्वी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। मध्य भाग में किसानों की खुशहाली को प्रदर्शित किया गया है। यह उनकी वर्षपर्यन्त मेहनत के सुपरिणाम को दर्शाता है। इसमें वे अपनी प्रसन्नता को लोकगीतों एवं नृत्य के जरिये सामुदायिक स्तर पर मनाते हुए दिखा रहे हैं। कृषि सफलता का उत्सव बिहू नृत्य के माध्यम से भी दिखाया गया है। झांकी के पिछले हिस्से में कृषि एवं मानव सभ्यता के उद्भव के बाद से ही मानव आहार में पशुपालन से प्राप्त उत्पादों को फसल उत्पादन के साथ पूरक आहार के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार देखा जाए तो पशुधन, समेकित कृषि प्रणाली का ही अभिन्न अंग है। कृषकों को नई सूचना प्रौद्योगिकी तथा मोबाइल एवं विभिन्न ऐप्स के माध्यम से प्राप्त जानकारियों से भी लाभ मिल रहा है।

ISSN 0971-2984 पंजी. सं. (क्यू)-437

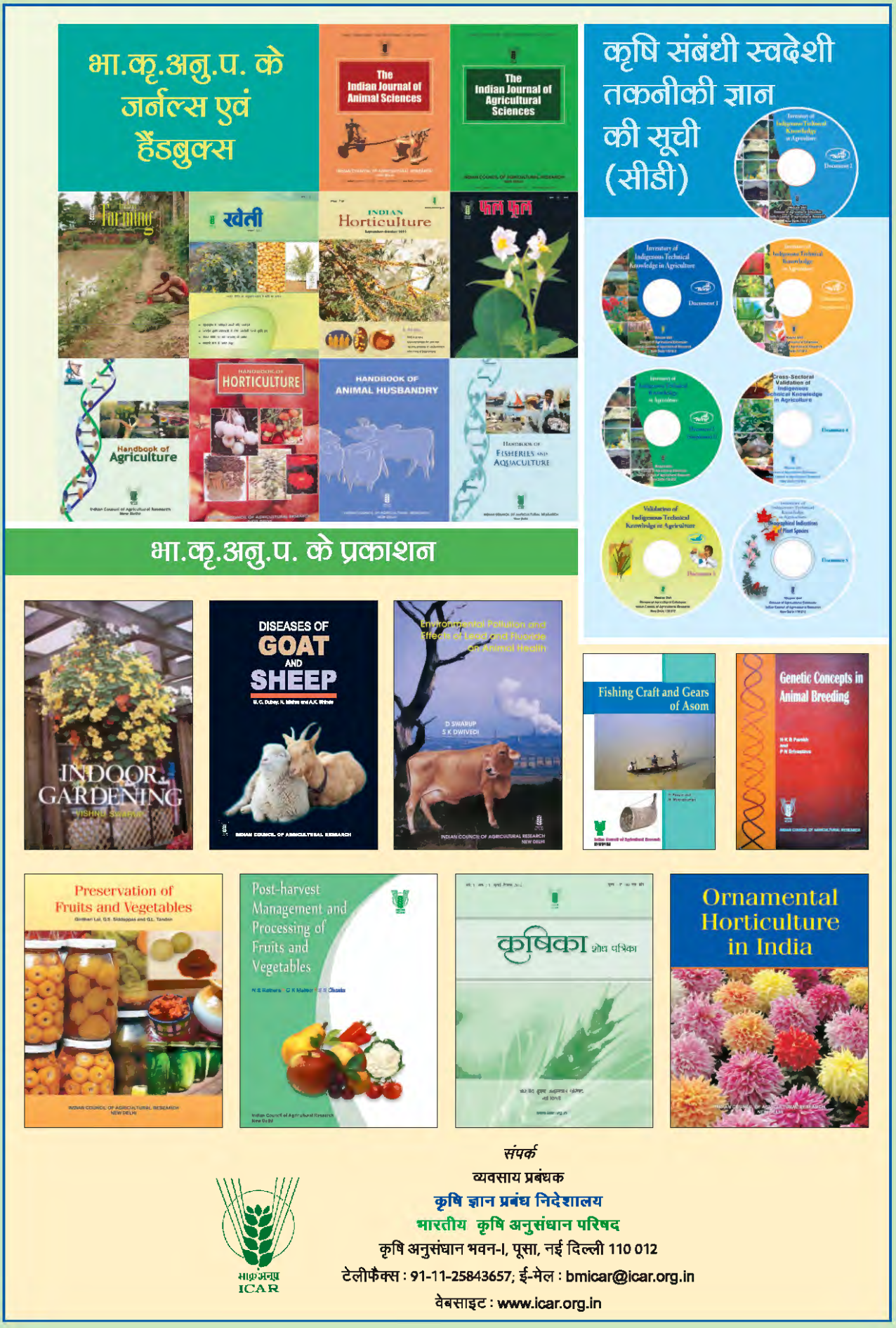

संपर्क

व्यवसाय प्रबंधक

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012

टेलीफैक्स : 91-11-25843657; ई-मेल : bmicar@icar.org.in

वेबसाइट : www.icar.org.in

डा. एस. के. सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह